श्रीमान सर श्री क्षत्रिय कुलावतंस सप्त सहस्र सेनापति

प्रतिनिधि **श्री तुकोजीराव महाराज पवार**

के. सी. एस. आय. श्री देवास नरेश.

दानवीर श्रेष्ठ श्री मोतीलालजी मथुरालालजी
रायठोर सर्राफ – इंदौर.

चौधरी कुलभूषण ठाकुर श्री.
गणपतसिंहजी पदमसिंहजी
बीसा पोरवाड, देवास.

पितात्रय ।

१

जिनके कृपाछत्र की शांतिपूर्ण साया में वास करता हूं उन दानवीर प्रजा—कार्य—दक्ष, विद्याप्रेमी, दयालु तथा उदार चरित श्रीमान सर श्री क्षत्रिय कुलावतंस सप्त सहस्र सेनापति प्रतिनिधि **श्री तुकोजीराव महाराज पवार** के. सी. एस. आय. श्री **देवास नरेश** के पवित्र चरणारविंदों में तथाः—

२

जिन सुविज्ञ, समाज तथा राजसेवारत प्रेमवत्सल व्यक्तिने मुझे इस संसार में जन्म दिया और जिनके व्यक्तित्व के कारण आज मैं जनता में जाना जाता हूं उन चौधरी कुल-भूषण, बीसा पोरवाड़ ज्ञातीय प० ठाकुर श्री **गणपतसिंहजी पदमसिंहजी** के परम वंदनीय चरण-कमलों में और—

३

जिनकी **भाग्यवती कन्या 'रत्न'** का पाणिग्रहण करने से मेरा संसार-मार्ग सुखकर आनंदमय तथा समाज सेवा-युक्त हुआ उन रायठौर कुलोत्पन्न, बीसा पोरवाड ज्ञातीय इंदोर निवासि दानवीर **श्री मोतीलालजी मथुरालालजी सर्राफ** के चरण-पंकजों में—

यह मेरी अल्पकृति प्रेमपूर्ण आदरयुक्त अति विनीत भाव से मैं अर्पण करता हूं । ता.

विनीत,

ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौधरी ।

इस पुस्तक के लेखन में जिन पुस्तकों का उपयोग किया गया उनकी नामावली।

अंग्रेजी.

1 History and Literature of Janism by V. D. Boradia.

2 Indian Antiquaries—all parts.

3 Epigraphia Indica—all parts.

हिन्दी.

१ जैन लेख संग्रह–भाग १, २, ३ (श्री. पूर्णचंद्रजी नाहर कृत)

२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग २ सं. १९७८ (श्री. ओझाजी से संपादित)

३ जाति भास्कर—(पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र कृत)

४ विमल चरित्र.

५ वस्तुपाल तेजपाल चरित्र.

६ सिरोही का इतिहास (श्री. ओझाजी कृत)

७ श्री महावीर चरित्र.

८ श्री बुद्ध चरित्र.

९ मारवाड राज्य का इतिहास. (गहलोत कृत)

१० राजपूताने का इतिहास भाग १, २ (श्री. ओझाजी कृत)

११ उपकेशवंश.

१२ महाजन वंश मुक्तावलि.

संस्कृत तथा मागधी.

१ विमल प्रबंध.
२ पट्टावलि—[कप्पसूरि विरचित]
३ श्रीमाल पुराण.
४ सद्धर्म सूत्र.
५ गृह्य सूत्र.
६ महाभारत.
७ औषनस्मृति.
८ मनुस्मृति.
९ याज्ञवल्क स्मृति.
१० एकलिंग महात्म्य.
११ जातिविवेक.
१२ प्रबंध चिंतामणि.
१३ विमल चरित्र (सौभाग्य नंदी सूरि कृत)

गुजराती-मराठी.

१ गुजराती लेख संग्रह भाग १-२-३(आः श्री विद्याविजयजी कृत)
२ श्रीमालिओना ज्ञाति भेद (श्री मणिलालजी कृत)
३ सूरिश्वर अने सम्राट.
४ पाटण चीप्रभात.
५ वस्तुपाल तेजपालनो रास (पंडित मेरुविजय कृत)
६ धातु प्रतिमा लेख संग्रह (आचार्य श्री बुद्धिसागर सूरि कृत)

श्री.

प्रस्ताविक बोल.

किसी जाति विशेषका इतिहास लिखना और देशका सर्व साधारण इतिहास लिखना इस में मह–दंतर है। भारत में ज्ञातियों की जैसी उलझन है वैसी प्रायः और किसी देशमें नहीं है। इस ज्ञाति वैचित्र्य के कारण के संबंध में लोक अपनी मनमानी कल्पनायें, निराधार वाकपांडित्य तथा ब्राह्मणों की द्वेषरूप कई बातें जन समुदाय के सन्मुख रक्खा करते हैं; परंतु यह पुस्तक लिखने के पहिले तक इन लोगों की जाति विषयक दलीलोंसे मेरा समाधान नहीं हुआ और मैं पोरवाड जाति के इतिहास के साथ साथ इसी विषयसे संबंध रखने वाले ज्ञातियों की उत्पत्ति के खास कारणों की भी खोज करने का प्रयत्न करने लगा। फलतः कई ग्रंथों के अनुशीलन के पश्चात इस संबंध में जो मेरा मत निश्चित हुआ वह मैने इसी ग्रथमें ग्रथित करना ठीक समझकर ज्ञातियों की उत्पति से ही इसका प्रारंभ करना निश्चित किया।

प्रथम प्रकरण पढकर पाठक अवश्य समझेंगे कि इन्हीं अयोग्य बंधनो के कारण आज कई ज्ञातियां क्षय रोगी बन

चली हैं। हजारों लोक कन्याओं न मिलनेसे अविवाहित रह जाते हैं। कहीं कन्याओं को योग्य वर नहीं मिलते और उन्हें जान बूझकर अयोग्य पुरुषों को देना पडता है। अतएव हर-एक ज्ञाति के समझदार लोंगो को चाहिये कि जो बंधन आत्म-नाशक हों उन्हें तोड तोड कर वे अपनी ज्ञाति को क्षय से बचाने का प्रयत्न करें। परंतु खासकर महाजनों की मान-सिक तीव्रताका ऱ्हास हो गया है। थोडा चलन विचलन करके वे थंडे हो जाते हैं। सामने वाला जो भी अत्यंत त्रास दाता हो तो भी अपने स्वार्थ के सन्मुख वे किसी बात की पर्वाह नहीं करते। उनको कितने भी दबाये जावें परंतु उस दबाव को फेंककर उछलकर खडे होने की उनमें हिम्मत नहीं। अनिष्ट रुढियां दूर करने की इच्छा से खडे होने की देर है कि अवश्य साथीदार मिल जावेंगें। ऐसे कार्य हिम्मत से हुआ करते हैं। एक हिम्मतवान उठ खडा हुआ कि उसी विचार के कमजोर लोक उसे आ मिलते हैं। सेंकडों वर्ष पहिले ज्ञातियों के जो नियम बने हैं वे उस सयय की परि-स्थित्यानुसार बने हैं। प्रस्तुत समय और है परिस्थिती और है। ऐसे समय यदि हमने परिस्थिती के अनुसार ज्ञाति के नियमों में परिवर्तन न किया तो अब उसका अनिष्ट परिणाम हुए बिना रहेगा नहीं। ज्ञातिजनों की संख्या शनैः शनैः घट रही है। मालवे में पौरवालों की संख्या २० वर्ष पहिले जितनी थी उससे आज आधी रह गई है। सेन्सस रिपोर्ट भी

हर समय ब्राह्मण तथा वैश्यों की कमी ही बतारहा है। इस कमी के अन्य अनेक कारणों में से, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय, धर्म भिन्नता, भिन्न प्रांतों का निवास तथा ऐतिहासिक अनभिज्ञता, ये मुख्य मुख्य कारण हैं। कई ज्ञातियों में कन्याओं की कमी है तो कहीं पुत्रों की कमी है। इन सब त्रुटियों से छुटकारा पाने की अब आवश्यकता है। सब से पहिला अच्छा से अच्छा और सुलभ उपाय कूपमंडूकता छोडकर ज्ञातियोंको फिरसे विशाल रुप देने का है। प्रांतीय भिन्नता न रखते कम से कम एक नाम धारण करने वाली ज्ञाति में, भारत भर में रोटी बेटी व्यवहार प्रचलित किया जावे। यह कोई बडा कठिण कार्य नहीं है। भिन्न भिन्न प्रांतों में रहने वाले एक ही नाम के ज्ञाति संघ एक ही ज्ञाति के हैं, भिन्न ज्ञातियां नहीं ऐसी ऐतिहासिक शोध खोल कर प्रमाण युक्त सिद्ध कर दिया जावे तो एक ज्ञातीयता का प्रश्न सहज हल हो सकता है। यह पुस्तक लिखने के उद्देशों में से यह एक मुख्य उद्देश है।

इस कार्य के फलीभूत होने के मार्ग में एक और भी कठिण रोडा अटकता है। वह है धर्म विभिन्नता। धर्म के ठेकेदार बन बैठे हुए हमारे लोग दूसरे धर्म के द्वेषी बनकर अपने अपने अनुयायियों से प्रतिज्ञा करवाते हैं कि वे अपनी संतान का लग्न संबंध स्वज्ञातीय परंतु अन्य धर्मी माता पिता की संतान से कदापि न करेंगे। वे समझते होंगे

कि इससे उनके धर्म की वृद्धि होगी। परंतु उन्हें इतना नहीं समझता कि इससे समाज की कितनी हानि हो रही है। और जब ऐसी कूपमंडूकता से समाज ही कुछ दिन में नष्ट हो जावेगा तो उनके अनुयायी कौन रहेंगे। साधुजनों ! यदि आपको अपने धर्म की वृद्धि करनी है तो साथ साथ समाज की वृद्धि के भी उपाय करते रहना चाहिये। क्या आपके अनुयायी अविवाहित रहेंगे तो अथवा निसंतानी होंगे तो आपका धर्म टिक सकता है ? "**अपंनिजःपरोवेत्ती**" ऐसा आचरण लघुताका दर्शक है। धर्मवृद्धि बंधनों से नहीं होती। उसको तो विद्वत्ता, निरभिमानता, वाक्चतुरता, निरपेक्षता। ओर कट्टर त्याग तथा निस्वार्थ की आवश्यकता है। बडे बडे धर्म संस्थापक तथा उद्धारकों ने यदि ऐसी कूपमंडूकता की होती तो आज भारत में ऐसे उच्चकोटी के धर्म दृष्टिगोचर भी न होते। दुसरे यह धार्मिक प्रश्न तथा विवाह संबंध का प्रश्न बहुत सुलभता से हल हो सकता है। प्रस्तुत पुस्तक लिखने के पहिले ऐतिहासिक सामुग्री एकत्रित करने को मैने भारत के कई प्रांतो में परिभ्रमण किया है। उस समय पौरवाल, ओसवाल आदि कई लोंगो से तथा साधु मुनिराजों से इस संबंध में वार्तालाप करने का मुझे अवसर मिला था, और तब उपरोक्त शंकाएं मेरे सन्मुख रखी गई थी। उस समय मैने उन लोगों को यही उपाय सुझाया था कि, प्रायः कन्या का धर्म उसके माता पिता का जो धर्म हो वही होता है। और

विवाहित स्त्री का उसके सुसराल का जो धर्म हो वही होता है। अर्थात कन्या का लग्न होने के पश्चात वह अपने ससुराल का धर्म पालन करे। जब साधुजनों का कर्तव्य अपने धर्म की प्रभावना करना तथा अन्य धर्मियों को अपने धर्म के अनुयायी बनाने का है तो क्या वे इन नवविवाहित अबलाओं को अपने धर्मानुरागिनीं न बना सेंकेगे ? यदि हमारे साधु इस योग्य हैं तो उन्हें उक्त अयोग्य बंधन रुप प्रतिज्ञाएं करवाने की आवश्यकता क्या ? ऐसी प्रतिज्ञाएं करवाने वाले साधु तो अपने आपको असमर्थ सिद्ध करते हैं।

अब रहे बाल वृद्ध विवाहादिक सामाजिक प्रश्न। इन की रोक के संबंध में नवयुवक और इनेगिने नये विचार के वृद्ध जन अब विचार करने लगे हैं परंतु इनके विरुद्ध अभी कई लकीर के फकीर भी हैं। इस कार्य के लिये ज्ञातिकी कॉन्फरन्स कुछ हितकारी होगी वा नहीं ? यह एक प्रश्न है। जहांतक कान्फरन्स, निज ज्ञाति के भिन्न भिन्न लोगों का परिचय बढाने का कार्य करती रहे, ज्ञाति में विद्या प्रचार तथा सामाजिक सुधार करती रहे, वहांतक वह आदरणीय तथा उपयोगी संस्था कही जा सकती है; परंतु वह जब ज्ञाति में वृथा अभिमान के कारण अनिष्ट भेद भाव दृढ करने का अथवा फूट फैलाने का कार्य करे तो वह अनिष्ट तथा निरुपयोगी होती है। कॉन्फरन्सों ने उक्त प्रश्नों का विचार करना चाहिये।

इस पुस्तक में पोरवाड महाजनों का एकत्रित इतिहास दिया गया है। आजकल इस ज्ञाति का भिन्न भिन्न प्रदेशों में निवास है। इन सब प्रांतों से सामुग्री एकत्रित न होसकी, और समाचार पत्रों में प्रसिद्ध करते हुए भी न किसीने भेजी अतएव यदि समाज में इस पुस्तक का योग्य आदर हुआ और इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो उसमें रही सही त्रुटियों की परिपूर्ति अवश्य करदी जावेगी।

पोरवाड ज्ञाति के लोक अधिकतर गुजरात, मारवाड, मालवा में हैं। दक्षिण और पूरब (हिंदुस्थान) कहाने वाले भारत के प्रदेश में बहुत कम प्रमाण में हैं किंतु गुजरात में गुजराती तथा मारवाड मेवाड में उस २ प्रांत के ढंग की भाषा रीति रिवाज रहन सहन इन लोगोंकी है; परंतु दक्षिण तथा मालवा में पोरवाडों की भाषा रहन सहन आदिमें दो भेद दिखाई देते हैं। हैं सब पोरवाड, परंतु कोई की भाषा मारवाडी मिश्रित और कोईकी गुजराती मिश्रित है। रहन सहन कपडे अलंकार रीति रिवाज में भी ऐसाही भेद दृगोचर होता है। देवास के प्रसिद्ध चौधरी कुल के एक घर में प्रायः एक शताब्दि पूर्व चोरी हुई थी तब चोरी के अलंकारों की नामावली में सुवर्ण के ४०) तोले के पायल लिखे हैं। यह सिद्ध करता है कि इस कुल के लोक प्रायः

गुजरात से आये होना चाहिये तथा इस कुल में पांव में सुवर्ण धारण करने की भी प्रथा होना चाहिये। उज्जेन के उपलब्ध कवाले गुजराती भाषा के हैं। उक्त बातें हमें बताती हैं कि श्रीमाल त्याग के पश्चात् प्राग्वाट (पोरवाड) लोक गुजरात तथा मारवाड मेवाड में जा बसे और वहां से फिर अन्य प्रांतों में गए।

मालवे में शाजापुर ग्राम के जैन मंदिर में एक श्वेत पाषाण की मूर्ति पोरवाड पंचों की बनाई हुई वि. सं. १५४२ की मिली है और देवास के श्री पार्श्वनाथ के मंदिर की एक शाम शांतिनाथ की मूर्ति सं. ११९१ की तथा एक छोटी वृषभनाथ की वि. सं. १५४८ की है परंतु इन पर के किसी के नाम नहीं पढे जाते। इसी मंदिर में पोरवाडों ने बनाई हुई अन्य छ मूर्तियां सं. १६८३ की एक ही दिन की बनी हुई प्रस्तुत हैं इससे प्रतीत होता है कि, मालवे में पोरवाडों का निवास वि. सं. १५४२ के पूर्व से है; परंतु पोरवाडों की मालवे की उपस्थिति का विश्वसनीय कोई प्रमाण वि. सं. १५४२ के पूर्व का अभि उपलब्ध न होने से इन लोंगों का इधर का आगमन–काल निश्चित होना बाकी रहा है।

गोरोंके चोपडोंका भी इस कार्य में विचार किया गया है परंतु ज्ञातिके इतिहास के लिये वे बहुत उपयोगी नहीं हैं क्यों कि इन लोगों की योजना पिछले समय में हुई है।

अर्थात् इन्होने ज्ञाति के इतिहास की बातें पुराणों पर से अथवा अन्य रीति से लोगों को प्रिय हो ऐसे रुपमें कल्पित बनाई हैं। इसीसे कोई भी गोर ब्राह्मणों के चोपडो में से कोई भी ज्ञाति की उत्पत्ती का सच्चा ऐतिहासिक विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता। मध्य काल के इतिहास में वे कुछ मदत दे सकते हैं वा नहीं यह देखने से हम को बिलकुल निराश होना पडता है। एक तो इनों में साल संवत होते नहीं, अर्थात कौन पुरुष कब हुआ यह निश्चित नहीं होता। वैसे ही वार-साई हक्कों के कारण और सांसारिक परिवर्तन के कारण इन्हों के चोपडों की ऐसी भी अफरातफर हुई है कि, पानसो वर्ष पूर्व की हकीगत कोई भी गोर [वही वाचक] विश्वसनीय रीति से उपस्थित नहीं कर सकता। अपने यजमान से धन की उघाई करने को आधार रूप इतनीही दो चार पीढियों की थोडी बहुत माहियत इनों के पास होती है, और बाकी सब गपोडोंका खेल होता है। निकट्वर्ती समय के इतिहास में भी ये लोग कुछ कम गोल माल नहीं करते। वारसा के झगडे के समय कई लोग इन वही वाचकों को न्याय मंदिरों में भी बुलवाते हैं। ऐसे समय इन के सच्चाई का भंडा फोड हुए बिना रहता नहीं। चोपडों के अक्षर आप लिखे खुदा पढे ऐसे होने से इनका गोल माल औरों के हाथ नहीं आता। वैसे ही अपना महत्व कम हो जाने के भय से ये लोग अपने चोपडों की नकल किसी को करने देते नहीं। इन सब

कारणों से इन लोगों के चोपडे इतिहास के लिये निरुपयोगी जैसे हैं। यजमानों से धन जबरन खीचनेके कारण कई लोगोंने इन्होंके चोपडे जल देवता–स्तृप्यंतु भी कर दिये। यदि इन लोगोंको अपना अस्तित्व रखना है तो इन्हों को चाहिये कि ये समयानुकुल साहित्य की परिपूर्ति करें। इतिहास के नाम पर गपोडों से संतुष्ट होने का अब समय नहीं है।

प्रमाणभूत और विश्वसनीय इतिहास केवल शिला–लेख, ताम्रपत्र, ऐतिहासिक काव्य, सनदें तथा पत्र व्यवहार और पुराने कागद पत्रों से ही मिल सकता है और इन्हीं साधनों का इस पुस्तक के लेखन में उपयोग किया गया है। कहीं पट्टावलियोंका तथा पुराने ग्रंथों का भी आधार लिया गया है। इन में से कुछ कुछ प्रमाण विश्वास पात्र न भी हों परंतु अन्य इनसे अधिक विश्वास पात्र प्रमाण उपलब्ध न हों वहां तक इन्हीं को प्रमाण भूत क्यों न माने जावें ?

प्रस्तुत कार्य में रायबहादुर महा महोपाध्याय गौरी-शंकरजी ओझा साहेब की कृपासे तथा श्री १००८ श्री मुनि ज्ञानसुंदरजी महाराज की कृपासे मुझे बहुत ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हुई तथा " श्रीमाली [वाणीया] ओना ज्ञाति भेद " इस पुस्तक का भी मुझे बहुत उपयोग हुआ है अतएव इसके लेखक तथा प्रकाशक और उक्त दोनों महानु–भावों को हार्दिक धन्यवाद देता हूं। इसके अतिरिक्त इस

कार्य में मुझे सेकडों पुस्तक पुराणादि ग्रंथ शास्त्र पट्टावलियां आदि साधनों का भी बहुत उपयोग हुआ है और उनके लेखक व प्रकाशकों का भी में अनुग्रहित हूं।

यह पुस्तक पढकर पाठकों के मनपर इस ज्ञाति सँबंधी कुछ प्रकाश पडे और पोरवाड ज्ञाति जनोंके अंतःकरण कुछ विशाल होकर अन्योन्य प्रांतों में बसने वाले पोरवाड भिन्न नहीं किंतु सब अपने ज्ञाति बंधु ही हैं ऐसी भावना उनमें प्रदीप्त होवे और ज्ञाति के अनिष्ट बंधनों को तोडने का तथा प्रचलित कुप्रथाओं को छोडने का मनोबल उन्हें प्राप्त होवे तो मेरा श्रम अशंतः तो भी सफल हुआ ऐसा मैं मानूंगा।

इस पुस्तक के लेखन कार्य में मेरी सहधर्मिणी सौ० श्री कमलादेवीने मुझे बहुत सहायता दी है अतः इन्हें मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

श्री सरदार प्रिंटिंग वर्कस, इन्दौरके चालक तथा मालकने भी इस पुस्तकी छपाई का कार्य बहुत उत्तमतासे समयपर समाप्त किया इस संबंध में वेभी धन्यवाद के पात्र हैं।

अंतमें उस सर्व साक्षी सर्वांतर्यामि परमेश्वर को अति-विनीत भावसे प्रणाम कर यह दीर्घ प्रस्तावना समाप्त करता हूं। इति शुभम्।

देवास (सीनियर),
तारीख २२ मार्च,
सन १९३० इ.

भवदीय,
ठाकुर लक्ष्मण सिंह, चौधरी.

अनुक्रमणिका ।

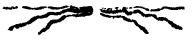

	विषय.	पृष्ठ.
१	जातिओं की उत्पत्ति	१
२	पोरवाड ज्ञाति की उत्पत्ति	२७
३	दसा बीसा मेद की उत्पत्ति	४९
४	तड से ज्ञाति कैसे बनी	७२
५	पोरवाडों का श्रीमाल परित्याग	७८
६	पोरवाडों के गोत्र	८१
७	चरित्रादि (विमलशाह)	९२
८	वस्तुपाल तेजपाल	१०२
९	पेथडशाह तथा मुंजाल	१२३
१०	धरणासा रत्नासा	१२६
११	उज्जयनी के बीसा पोरवाड	१२९
१२	चौधरी—कुल देवास	१३२

पोरवाड महाजनों का इतिहास।

ज्ञातिओं की उत्पति।

श्रीमाल पुराण से जाना जाता है कि द्वापारयुग का अंत और कलियुग के आरंभ से ज्ञातियों की स्थापना हुई है। कलियुग के पहिले अन्य युगों में ज्ञातियां आज जिस रूप में दिखाई देती हैं उस रूप में न थी। पहिले ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यही चार वर्ण थे। जैसे प्रोफेसर का काम करने वाला प्रोफेसर कहा जाता है, खेती का काम करने वाला किसान कहा जाता है, सिपाईगिरी करने वाला सिपाई कहा जाता है वही बात पहिले इन वर्णों की थी। जो कुलगोर की तरह लोगों को धर्म-संस्कार कराकर उन्हें धर्मशास्त्र पढाते वे आचार्य, जो पाठशाला स्थापन कर विद्यार्थियों को अनेक प्रकार की विद्याओं का अध्ययन कराते वे अध्यापक, जो यज्ञयाग कराते वे याजक, जो साधु-वृत्ति से जीवन व्यतीत करते वे साधु और जो विविध प्रकार के व्रतादि क्रिया करते वे मुनि कहाते और इन सब का समावेश ब्राम्हणों में होता। जैसेः—

आचार्या अध्यापका याजकाः साधवःमुनयश्च ब्राम्हणाः।

(सद्धर्म-सूत्र)

इसी तरहः—

कामयोग प्रियातीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रिय साहसाः ।
त्यक्त स्वधर्मा रक्तांगास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः ॥ १ ॥
गोभ्यां वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युप जीविनः ।
स्वधर्मान्नुतिष्ठंति ते द्विजाः वैश्यतां गताः ॥ २ ॥
हिंसावृत्ति क्रियालुब्धाः सर्वे कर्मोप जीविनः ।
कृष्णाः शौच परिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥ ३ ॥

(महाभारत—शांतिपर्व)

इस तरह आर्य जाति उच्चनीच भेदवाले विभागों में विभाजित हुई । ये विभाग जड नहीं है और न जड होना चाहिये; किंतु पुराना सत्यपुराने ग्रंथों में पुराने तत्व ज्ञानियों के मुख में ही रह गया जैसेः—

एक वर्णमिदं पूर्णं विश्वमासद्युधिष्ठिर ।
कर्म क्रिया विशेषेण चातुर्वण्यं प्रतिष्ठितं ॥ १ ॥
सर्वे वै योनिजा मर्त्याः सर्वे मूत्रं पुरीषिणः ।
एकेंद्रिये द्रियार्थाश्च तस्मास्छील गणो द्विजः ॥ २ ॥
शूद्रोपिशील समान्नो गुणवान् ब्राम्हणो भवेत् ।
ब्राम्हणोपिक्रियाहीनः शूद्रादप्यधमो भवेत् ॥ ३ ॥
शूद्रो ब्राम्हणतामेति ब्राम्हणश्चेति शूद्रताम ।
क्षत्रियाज्जात मेवंहि विद्याद्वैश्यान्त थैवच ॥ ४ ॥

(महाभारत)

अर्थात्—हे युधिष्ठिर ! अखिल जगत एकही ज्ञाति का है । कर्म क्रियाओं की विशेषता से चार वर्णों की स्थापना हुई

है ॥ १ ॥ सब योनि से उत्पन्न हुए हैं। सब मल मूत्र से भरे हुए हैं। सब के इंद्रिय एकसे हैं और विषय (इंद्रियों का उपभोग) भी सब का एकसा है अर्थात् शील गुणादि से ही द्विज होते हैं ॥ २ ॥ शूद्र भी शीलवान हो तो उत्तम ब्राम्हण होता है; और ब्राम्हण क्रियाहीन हो तो शूद्र से भी हलका होता है ॥ ३ ॥ शूद्र ब्राम्हण होसकता है, और ब्राम्हण शूद्र होसकता है। इसी तरह क्षत्रिय और वैश्य भी निजगुण कर्मानुसार उच्चनीच होते हैं ॥ ४ ॥

भारतवर्ष का इतिहास देखो, ग्रीस का इतिहास देखो वा वर्तमान यूरोप का इतिहास देखो जहां तहां उच्च पदवीधरों में जाति मत्सर यह एक स्वाभाविक बात है। विद्या से, धन से, राजसत्ता से वा अन्य कोई भी कारण से उच्चता पाये हुओं में धीरे धीरे जाति मत्सर प्रज्वलित हो ही जाता है। हम उच्च और जो हमारे जैसे नहीं वे हलके यह भाव आज कलके उच्च शिक्षित वकील, डॉक्टर तथा अधिकारी वर्ग में भी दिखाई देता है। इसी प्रकार प्राचिन कालिन नेता और उनके गुरुसदृश्य ब्राम्हण भी इस भाव का निवारण न कर सके।

इस पकार वर्ण जड़ होने के प्रश्चात् पूर्व प्रचलित कन्या व्यवहार पर अकुंश रक्खा गया, और उच्च वर्ण की कन्या नीच वर्ण में न दी जाने के नियम हुए उच्च वर्णीय पुरुष निम्न

वर्ण की चाहे जिसकी कन्या का ग्रहण करे परंतु निम्न वर्ण का पुरुष उच्च वर्णीय कन्या न लेने पावे इस वास्ते खास नियम निर्माण किये गये और ऐसे होने वाले लग्नों को अनुलोम लग्न कहा गया। नियम तो ऐसे किये गये किन्तु उनका निर्विघ्न पालन न हुआ। पूर्व प्रथा की छाप लोगों के अंतःकरण पर बसी रहने से अथवा अस्वाभाविक नियमों का पालन होना अशक्य होने से वा उस समय का जन समुदाय नूतन बंधन सहन करने जैसा न होने से अथवा अन्य कोई कारणों से उच्च वर्णीय कन्याओं का निम्न वर्ण के पुरषों से शरीर संबंध पचलित रहा। अर्थात् ऐसे नियम बाह्य होने वाले लग्नों को उच्चवर्णीय लोक 'प्रतिलोम' (उलटे, विपरीत) लग्न के नाम से संबोधन करने लगे। ऐसे लग्न करने वालों को शिक्षारूप ऐसा नियम किया गया कि, लग्न करने वाले पुरुष के वर्ण से कन्या का वर्ण जितना अधिक उच्च हो उतनी ही उस लग्न से होने वाली प्रजा अधिकाधिक निम्न श्रेणी की हो. उदाहरणार्थः—वैश्य कन्या को यदि शूद्र से प्रजोत्पत्ति होवे तो वह वैदेहक * जाति की हो। इन्होंने बकरे भैसी आदि पशुओं का पालन करना और उनके घी दूध बेचकर निर्वाह करना। यदि शूद्र वैश्य स्त्री से व्यभिचार कर प्रजोत्पत्ति

---

* वैश्यायां शूद्र संसर्गाजातो वैदेहकः स्मृतः। अजानं पालानां कुर्यान्महिवीणां गवामपि। (औशनस स्मृति श्लोक. २०)

करे तो वह प्रजा "चक्री"* (तेली) जाति की हो उसने तेल तथा नमक बेचने का धन्धा करना। यदि शूद्र क्षत्रिय कन्या से प्रजोत्पत्ति करे तो वह "पुलकस"§ (कलाल) जाति की हो। उसने मदिरा तथा शहद बेचने का धंदा करना। यदि शूद्र क्षत्रिय स्त्री से व्यभिचार कर प्रजोत्पत्ति करे तो वह प्रजा "रजंक"‖ (रंगरेज) जाति की हो और यदि शूद्र ब्राह्मणी से प्रजोत्पत्ति करे तो वह प्रजा 'चडांल' (भंगी)† ज्ञाति की हो। इसने सीसा वा लोहे के आभूषण पहिनना, गले में चमडा और बगल में झालर बांधना दो प्रहर पहिले ग्राम का मैला साफ करना और दोपहर के बाद गांव में जाना नहीं। गांव के बाहर नैऋत्य कोन में इस जाति के सब लोगों ने एकत्र रहना। जो कोई इस नियम का पालन न करे उसका

---

* वैश्यया शूद्रतश्चैर्या जातश्चक्रीच उच्चते [औः स्मृ. २२]

§ नृपायां शूद्र संसर्गाज्जातः पुल्कस उच्चते। सुरा वृत्तिं समारूह्य मधु विक्रय कर्मणा ॥ [औ. स्मृ. १७]

‖ नृपायां शूद्रत श्चैर्याज्जातो रंजक उच्यते [औ. स्मृ १९]

† ब्राह्मण्यां शूद्र संसर्गाज्जातश्चांडाल उच्यते [श्लोक ८]
सीसका भरणं तस्य कार्ष्णाय समथापिवा। वह्नी कंठे समावध्य झलरीं कक्षतोपिवा ॥ ९ ॥
मलाप कर्षणं ग्रामे पूर्वाण्हे परि शुद्धिकं।
न पराण्हे प्रविष्टोपि बहिर्ग्रामाश्च नैरुते ॥ १७ ॥
पिण्डी भूता भवंत्य नोचड वध्या विशेषतः ॥ १० ॥
(औ. स्मृ.)

वध करना। इस प्रकार उच्चवर्ण की स्त्री को निम्नवर्ण के पुरुष का संसर्ग न हो एतदर्थ उक्त कठिण बंधन रक्खे गए।

निम्न वर्ण का पुरुष उच्च वर्णीया कन्या से विवाह करे तो वह नीची कही जावे, यह तो ठीक परंतु उच्च वर्णीय पुरुष यदि निम्न वर्णीय कन्या से विवाह करे तो क्या वह उच्च वर्णीय माता पिता की कन्या के बराबरी की हो सकती है ? इस प्रकार के मत्सर के कारण ऐसे नियम बने कि, उच्च वर्ण का पुरुष स्ववर्णीया तथा निम्न वर्णीया कन्या के साथ भी विवाह कर सकता है। परंतु निम्न वर्ण की कन्या से उत्पन्न प्रजा धर्म क्रियाओं में, सांसारिक मान सन्मान में तथा दाय भाग में सवर्ण की कन्या से उत्पन्न प्रजा की बराबरी न कर सकेगी। मात्र उच्च वर्ण के पुरुष से संबंध करने का लाभ यह होगा कि, ऐसी युग्मोत्पन्न प्रजा कन्या जिस वर्ण की हो उससे किंचित उच्च वर्ण की समझी जावे। जैसेः—ब्राह्मण ब्राह्मणज्ञाति की कन्या से विवाह करे तो इनसे होने वाली प्रजा ब्राह्मण हो और जो क्षत्रिय जाति की कन्या से विवाह करे तो इनसे होने वाली प्रजा ब्राह्मण नहीं परंतु "मूर्धाभिशिक्त" राज्याभिषेक करने योग्य उच्चप्रकार की क्षत्रिय जाति की हो। ब्राह्मण वैश्य स्त्री से विवाह कर जो प्रजोत्पादन करे तो वह "अंबष्ठ" वैश्य से जरा उच्च वर्णीय समझा जावे; और वह मनुष्य तथा हाथी घोड़े की वैद्यकी कर निर्वाह करने वाली जाति हो। वैसे ही ब्राह्मण से विवाहित शूद्र

स्त्री से होने वाली प्रजा "निषाद" अथवा "पार्शव" नाम की जाति हो। यह शूद्र से जरा उच्चवर्णीय हो; और ये सुनार का धन्धा करके अपना निर्वाह करे। इस प्रकार जाति मत्सर के कारण एकही पुरुष से होने वाली प्रजा मैसाल के उच्च नीच वर्णानुसार से भिन्न भिन्न जाति की तथा भिन्न भिन्न अधिकार की होने लगी।

अनुलोम लग्न से एक ब्राह्मण तीन नयी जातियों की उत्पत्ति करे। एक क्षत्रिय दो जातियों की वृद्धि करे; और एक वैश्य एक जाति भेद बढावे। यह अनुलोम जाति भेद और उससे विपरीत अन्य प्रतिलोम जाति भेद, इतने भेद तो केवल चार वर्ण के मिश्रण से हुए। यदि यह भेद की गाडी यहीं पर अटकती तो भी ठीक होता। परंतु जिस जाति मार्ग पर वह चल रही थी उस मार्ग का अंत आना कठिन था। चतुर्वर्ण स्थूलता पाने के पश्चात् अनुलोम जातियां बनी। अब इन नयी जातियों की प्रजा के मूल चार वर्ण की प्रजा के साथ लग्न हो तो उनसे उत्पन्न होने वाली प्रजा का सामाजिक आदि दर्जा निश्चित करने की आवश्यकता हुई। इसी प्रकार अनुलोम प्रतिलोम प्रजा का आपसी लग्न होकर उत्पन्न होने वाली प्रजा का स्थान भी निश्चित करना आवश्यक हुआ। यह कार्य और इसके निर्वाह के साधनों की व्यवस्था होने के पश्चात इनकी प्रजा और मूल वर्णों की अनुलोम प्रतिलोम जातियां अथवा उन्होंके मिश्रण से उत्पन्न हुई वर्ण-

संकर जातियां कोई के साथ लग्न करे तो प्रतिलग्न से होने वाली प्रजा की जाति फिर नयी बने। इस तरह हनुमानजी की पूँछ जैसे इन जातियों का विस्तार बढता ही गया। कोई भी दो भिन्न ज्ञातियों में लग्न संबंध हुआ कि, तीसरी नूतन ज्ञाति पैदा हुई। इस तीसरी जाति का अनुलोम प्रतिलोम दर्जा निश्चित करने का काम शास्त्रकार ब्राह्मणों का था। वे शास्त्रों के मूल तत्वानुसार नये निर्बंध निश्चित करते और राजा उनको अमल में लाते। ऐसी उस समय की प्रणाली थी। देश के अन्योन्य विभागों के निवासी ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चतुर्वर्ण के लोगों का मूल बन्धन एकसा था; परंतु उनमें जैसा जैसा अंतर पडता गया भिन्न भिन्न विभागवासी लोगों के लिये प्रदेशीय आवश्कतानुसार तथा तद्देशीय शास्त्रकारों के अभिप्रायानुसार भिन्न भिन्न नियम बनाये गये। व्यवहारिक नियमन करने वाले इन शास्त्रों को "स्मृति" कहने लगे। स्मृतियों के पहिले भी व्यवहार नियामक ग्रंथ थे; और वे "ग्राह्यसूत्र" नाम से जाने जाते थे। स्मृतियां लिखी जाने बाद भी ब्राह्मण इन ग्राह्यसूत्रों ही को प्रमाणभूत मानते आरहे थे। भिन्न भिन्न प्रदेशवासी ब्राह्मणों में वेद ओर उनकी शाखा (प्रकरण) भिन्नता से प्रचलित थे। इसी प्रकार भिन्न शाखानुसार व्यहार नियामक ग्राह्यसूत्र भी अलग अलग थे। अर्थात् शाखा भिन्नता के कारण व्यवहार में भेदा भेद होने लगा। आज "स्मृति"

नाम से पहिचाने जाने वाले अठारह बीस ग्रंथ उपलब्ध हैं वे अन्योन्य स्थल वासियों के हितार्थ भिन्न भिन्न काल में रचे गए हैं। इसमें मनुस्मृति और याज्ञ वल्क्य स्मृति ऐसे दो मुख्य ग्रन्थ हैं। देश के सब लोग इन्हीं दो ग्रन्थों को मानते थे और इन्हीं के आधार पर शासन पद्धति स्थित थी। जिनशास्त्रकारों को कालधामानुसार कोई विशेष नियमों की अवश्यकता ज्ञात हुई उनोंने उक्त दो ग्रन्थों को प्रमाणभूत लेकर पुरवणी रूप आवश्यक नियम निर्माण किये। गृहसूत्र, मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृतियों में वर्णसंकर प्रजा के कुछ थोडे नियम हैं। इन जातियों का जिस विभाग में जैसा जैसा विस्तार होता गया वैसे वैसे उस प्रांतवासि शास्त्र-कारों को विशेष नियम निर्माण करने पडे। यही कारण है कि कोई स्मृति में ऐसे नियम थोडे हैं और कोई में अधिक हैं। एक से दूसरी, दूसरी से तीसरी, तीसरी से चौथी ऐसी उत्त-रोत्तर बढने माली ज्ञातियों के नाम उनों के सांसारिक तथा धार्मिक अधिकार और उनों का निर्वाह साधन आदि के विस्तृत नियम निर्माण किये गये हैं। "औषनस स्मृति" वर्ण-संकर जाति के नियमों का खास ग्रंथ है। इस स्मृति में इन जातियों के संबंध में जितना विस्तार पूर्वक लिखा है उतना और किसी स्मृति में नहीं लिखा है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि, जिस प्रदेश में "औषनस स्मृति का उपयोग होता हो उसमें ज्ञातियों का बाहुल्य होना चाहिये।

गुजरात में जितनी ज्ञातियां (वर्ण संकर ज्ञातियां) हैं उतनी अन्य कोई प्रदेश में नहीं है। अतएव औषनस स्मृति अनुमानतः गुजरात के लिये बनी होना संभवनीय है। आवश्यकतानुसार अन्य विभागों के वास्ते रचि हुई पुरवणी स्मृतियों का आधार उनसे अन्य विभागों में भी लिया जाना संभवनीय है। जैसे कि, आजकल भिन्न भिन्न हायकोर्टों के फैसलों के आधार लिये जाते हैं।

जब वर्णसंकर ज्ञातियों की वृद्धि असह्य हो गई तब शास्त्रकर्ताओं ने इस पीडा का अंत करना निश्चित किया। इसके लिये विषम ज्ञातियों का लग्न व्यहार बंद करना यही एक मात्र उपाय सोचा गया। प्रति मनुष्य ने अपनी समान जाति के और पूर्ण परिचित ऐसे लोगों से लग्न संबंध करना। जिसका दर्जा जराभी भिन्न हो; वा जो पूर्ण परिचित न हो उससे लग्न व्यवहार करना नहीं ऐसे दृढ नियम निर्माण किये गये। इन नये नियमानुसार समान श्रेणि के तथा परिचित लोगों के जो समूह निर्माण हुए वेही आज की जातियां हैं।

ऐतिहासिक साधनों के अभ्यास के कारण जो उक्त इतिहास नहीं जानते हैं और केवल यूरोपियन पंडितों के अभिप्राय के प्रमाण पर ही तर्कमय इतिहास निर्माण करते हैं वे अनेक असंबद्ध विधान किया करते हैं। कोई तो सब को परकीय मानते हैं, और कोई सर्व दोष का टोकरा ब्राह्मणों के

मत्थे मार देते हैं। सत्यतः हमारा जाति भेद हमारे बुढांवों के उन्मत्त स्वभाव जनित दोष से स्वाभाविक उत्पन्न हुआ है।

"ज्ञाति" शब्द "ज्ञा" धातु से बना है जिसका अर्थ "जानना" है। परिचित (जाने हुए) मनुष्यों का समूह वही ज्ञाति। पहिले एक वंश के, एक गोत्र प्रवर के, जिनको सूतक लगता हो वैसे और जो दाय भाग के हकदार हों वे एक जाति वा ज्ञाति के कहलाते। ब्राह्मण मात्र की ज्ञाति; क्षत्रिय मात्र की क्षत्रिय, वैश्य मात्र की वैश्य और शूद्र मात्र की शूद्र ज्ञाति जानी जाती थी, परन्तु वर्णसंकरता का खीचडा होजाने से "ज्ञाति" शब्द नूतन निर्मित नये समूहों को लगाया गया। एक गाम में रहने के कारण, एकही धन्दा करने के कारण, निकट वर्तिस्थानों में * वास करने के कारण, एक धर्मावलंबी होने के कारण ऐसे §विविध कारणों से लोगों के समूह बन जाते हैं। ऐसे ज्ञाति निर्बंध कब से निर्माण हुए? किन

---

* मोढेरा स्थानके रहिवासि मोढ, श्रीमाल नगर के श्रीमाली, ओसा नगरी के ओसवाल. प्राग्वाट के पोरवाड गौड के श्री गौड. मेवाड के मेवाडा. महाराष्ट्र के महाराष्ट्रीय (**मरहटा**)

§ सर्व धर्मेषु तस्मातु यौन पिंडो विधीयते। स्थापित स्थूल वृत्तानां ज्ञातिभेद कलौ युगे ॥ १ ॥ संकरत्व निषध्याय वर्तते शिष्ट संग्रहात अज्ञातोत्पत्ति भावना ह्यूयस्ते सति सोन्वयः ॥ २ ॥ सांकर व्यवहारात्रमास्तु तस्मात स्थितिः कृता। स्थान स्थापित भेदेन **स्थान स्थापक** नामभिः ॥ ३ ॥ समवायो भवेज्ज्ञातिः सज्ज्ञाति स्यात्कुलो युगे।

(पद्म पुराणांतर्गत—एकलिंग महात्म्य)

ब्राह्मणों ने यह नियमावलि निर्माण की ? किस राजा के शासन काल में ये नियम अमल में लाये गये यह निश्चय पूर्वक बताने योग्य साधन अभी उपलब्ध हुए नहीं है। पुराण और स्मृतियोंसे इतनाही जाना जाता है कि, सामाजिक नियम ब्राह्मण बनाते और राजा लोग उनको अमलमें लाते। स्मृति और पुराण विक्रम संवत पहिले ४००–५०० वर्ष से लेकर विक्रम संवत ५०० तक रचे गए हैं। जातिओं के संबंध में विचार करनेवाली समग्र स्मृतियों में ऐसा कुछ न कुछ प्रमाण उपलब्ध होता है। इन ग्रंथों की रचना के समय ही प्रस्तुत की ज्ञातियों का जन्म हुआ है। भिन्न भिन्न ज्ञातियों के पुराण बहुत आधुनिक समय में लिखे गए हैं, ऐसे प्रमाण उन पुराणों में से उपलब्ध होते हैं। अर्थात् ज्ञातियों के पुराण वि. सं. ५०० के पश्चात रचे गए यह मान लिया जावे तो भी उनका काल संवत एक हजार से नीचा नहीं उतर सकता। संवत एक हजार पीछेके व्योरेवार ऐतिहासिक साधन मिल चुके हैं। इन साधनों से समझता है कि आज कल की बहुतेरी ज्ञातियां आज से एक हजार वर्ष पूर्व भी आज ही जैसे स्वरुप में प्रचलित थी; परंतु ज्ञातिके पुराणों में ज्ञाति की उत्पत्ति का काल्पनीक इतिहास बहुत भरा हुआ पाया जाता है। और वैसा ही इतिहास संवत एक हजार के लगभग और इससे पहिले के लेखों में प्रमाण भूत माना हुआ देखा जाता है (देखो–वल्लभी राजाओं के ताम्रपत्र,

राष्ट्रकूट के ताम्रपत्र, चालुक्यों के शिलालेख आदि—)
इस प्रकार देखने से मालुम होता है कि जिन जातियों के पुराण संवत एक हजार पहिले रचे गए हैं उन जातियों का अस्तित्व पुराण रचना काल से दोसो चारसो वर्ष पूर्व से होना चाहिये। जिन जातियों के नाम किसी स्थान के नाम से रक्खे गए हैं उन स्थानों का इतिहास देखा जावे तो निर्विवाद सिद्ध होता है कि वि. सं. ५०० के पूर्व ये ज्ञातियां थीं; परंतु उपलब्ध प्रमाणों से यह तो अवश्य कहना होगा कि प्राथमिक चतुवर्णों के मूल नियमानुसार आज से लगभग ९०० वर्ष तक उच्च वर्णीय पुरुष निम्न वर्ग की कन्याओं से लग्न संबंध करते थे। उदाहरणार्थः—मारवाड का ब्राह्मण हरिश्चंद्र की दो पत्नियों में से एक ब्राह्मण जाति की और द्वितीय क्षत्रिय जाति की थी।* मारवाड से जाकर कनोज में अपना राज्य स्थापन करने वाले परिहार राजाओं में से राजा महेन्द्रपाल के गुरु राजशेखर ब्राह्मण की पत्नि विदुषि अवंति सुंदरी चोहान वंशकी थी। यह राजशेखर वि. सं. ९५० के लगभग जीवित था। अणहिलपुरपट्टण के राजा कर्णदेवका विवाह चंद्रपुर की जैन कुमारी मिलन देवीसे हुआ था और वहीं के राजा भीमदेव की विवाहित पट्टराणी

---

* देखो शिलालेख वि. सं. ८९४ चैत्र शुद्ध ५ और वि. सं. ९१८ चैत्र सु २ [लखनौ म्यूझियम]—गहलोत कृत मारवाड राज्य का इतिहास.

बकुलादेवी वणिक कन्या थी । राजा भीमदेव वि. सं. १०८८ तक जीवित था । इस से सिद्ध होता है कि प्रचलित ज्ञातियां जो मि. वि. सं. पहिले चारसों पानसो वर्ष के लगभग निर्माण हुई थी तोभी आज कल जैसा एकांतिक वैवाहिक प्रबंध वि. सं. १०८८ तक प्रचलित नहीं हुआ था । अस्तु, ज्ञाति निबंध के सबंधं में इतना विवरण करने के पश्चात अब मुख्य विषय से संबंध रखनेवाली वणिक ज्ञातियों का विचार करना आवश्यक है ।

२
वाणिक ज्ञातियां

" वणिक " शब्द कुल सूचक नहीं है; परंतु व्यवसाय सूचक अवश्य है । व्यापार के लिये संस्कृत शब्द " वाणिज्य " है । वाणिज्य करनें वाला " वणिकाः " कहलाता है । वणिका शब्द में का अंत्यवर्ण ' क् ' प्राकृत व्याकरण के नियमानुसार उच्चार में दबाकर प्राकृत भाषि " वणिआ " ऐसा उच्चार करते हैं । उत्तर हिंदुस्थान तथा बंगाल प्रांत में ' व ' की जगह ' ब ' का तथा ' ण ' की जगह ' न ' का उच्चारण होता है । एवं " वणिआ " (विकृत ' वानिआ ') ऐसा मूल ' वणिकाः ' शब्द का रुपांतर हुआ । व्यापार व्यवसाई ' बनिया ' कहाते हैं । जैसे मास्तर शब्द ज्ञाति सूचक नहीं

है; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, हजाम, धोबी, पारसी, मुसलमान, आदि कोई भी जाति का जो कोई मास्तर का काम करे वह मास्तर कहावे, वैसेही हर कोई जातिका मनुष्य वाणिज्य करे तो बनिया कहावे।

पहिले वर्ण व्यवस्था के नियमन के समय में उच्च ज्ञाति के मनुष्य को निम्न वर्ण के मनुष्य का धंदा करना नियम बाह्य न था।

इस वाक्य के अनुसार खेती, गौपालन, तथा व्यापार वैश्यों का नियमित काम था। परंतु ब्राह्मण क्षत्रिय यदि चाहें तो उक्त काम कर सकते थे। केवल अमुक समय तक यदि उच्च वर्णीय मनुष्य निम्न वर्ण के मनुष्य का काम करता रहे तो वह उसी निम्न वर्ण का माना जावे ऐसा भी एक नियम था। आजकल हम जिसे 'बनिया' नाम से संबोधित करते हैं वह इसी तरह ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों में से व्यापार करने वाले लोगों का समूह है। इस समूह की वृद्धि होने का एक और भी महान कारण हुआ है और उसे भारतीय धार्मिक विप्लव कहना अयोग्य न होगा।

जाति मत्सर के परिणाम से आर्य प्रजा में वर्णों को जडता आना तथा वर्णसंकर के कारण वर्णों में भेदा भेद की वृद्धि होकर शतशः ज्ञातियां निर्माण होना यह समाज विस्खलित होने का भविष्यत् भय तात्कालिन कई विचारवान

सुधारकों को भय भीत कर रहा था। जैन तथा बौद्ध धर्म के प्रवर्तक जैसे ब्राह्मणों के यज्ञ यागादिक निषेध करने को कटिबद्ध हुएथे वैसे वे उक्त अनिष्ट ज्ञातिभेदके भी कट्टर विरोधी बनेथे। इनोंने इस आत्मघातकी बंधनका अनादर कर एकही जाति (संघ) की स्थापना की, एवं अपने अपने सिद्धांत के सभी अनुयायीयों को एकही संघ (ज्ञाति) के घटक निश्चित किये, और उनके धार्मिक तथा सामाजिक व्यवहार समान रक्खे। जैन तथा बौद्ध धर्म प्रवर्तकों की साधुता, उग्र तपश्चर्या और निस्वार्थ लोकहित वृत्ति देखकर लाखों लोक उनकी ओर आकर्षित हुए। सबकेसाथ समान व्यवहार तथा सब जीवों के साथ दयाभाव इन दो सिद्धांतोंने लक्षावधि मनुष्यों को वश करलिये। क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय, क्या वैश्य, इन तीनों वर्णकी ज्याति उपज्यातियां एकत्रित कर जैन संघ बनाया गया। शूद्र मानीं गई ज्ञातियों को जैन संघमें सम्मिलित करना या नहीं इसका योग्य प्रमाण मिलता नहीं; परंतु रंगरेज (छीपा) आदि कई शूद्र जातियां जैन धर्मावलंबी होते हुएभी जैन संघसे इनका खानपानादि व्यवहार नहीं है. इससे संभवनीय है कि, शूद्र उस समय तिरस्करणीय गिने जानेके कारण लोक-रुचिकी ओर ध्यान देकर इनोंका अनादर कियागया हो। आजकल जैसे ढेड, भंगी आदि अस्पर्शों को क्रिश्चनोंने ख्रिस्ति समूहमें सम्मिलित करलेने से उच्चवर्ण के लोक ख्रिश्चन होने से घृणा करने लगे हैं वैसेही यदी जैन और बुद्ध धर्म प्रवर्तक

शूद्र जाति को अपने अपने संघमें सम्मिलित करलेते तो उपदेश चाहे जितना प्रभावशालि होता तोभी उच्चवर्ण का लोकसमूह उनके संघमें सम्मिलित होने से रुकजाता। संभवनीय है कि कदाचित इसी विचार से उन्होंने शूद्रोंको अपने अपने संघों में नहीं मिलाये हों।

बौद्ध और जैन संघ बलवान होगये। अखिल भारत इन संघों से आवृत होगया। ब्राह्मण और उनका धर्म जहांतहां से अदृश्य होनेलगा। बडे बडे राजा भी इन्हीं धर्मों का पालन करनेवाले हुए; और वेद धर्मियों में "को वेदानुद्धरिषति" (वेदका उद्धार कौन करेगा) ऐसे प्रश्न उपस्थित हुए।

इस समय ब्राह्मण और जैन बुद्धों में कदर शास्त्रार्थ होकर हारजीत हुआ करती; परंतु इससे जैन बौद्ध संघ की वृद्धि किसी प्रकार न रुकी। "हस्तिना ताडय मानोपि न गच्छेज्जैन मंदिरं" ऐसे वैरभाव पूर्ण शब्दोच्चारण होने लगे। धर्म के कारण राजा राजाओंमें युद्ध हुए। एक दुसरे के विरुद्ध वैरभावयुक्त निंदा प्रचुर अनेक ग्रंथ निर्माण किये गये। वाममार्ग के प्रचारसे ब्राह्मण धर्मको अति वीभत्स स्वरूप प्राप्त हो चुका था। धर्मके नाम पल पलमें होनेवाली पशुहिंसा, मनुष्यहिंसा, मद्यपान तथा दुराचार से ब्राह्मण धर्म जनता की दृष्टिमें घृणा पूर्ण बनचुका था। इसीकारण ब्राह्मणों के सब प्रयत्न निष्फल होकर जैन बौद्धों की प्रतिदिन वृद्धि होती गई। अंतमें जब

ब्राह्मणोंनें देखा कि जन समुदाय को मान्य ऐसा धर्म प्रचलित किये विना चारा नहीं तब पुराणों की रचना का आरंभ हुआ। वाम मार्गके तंत्र ग्रंथों के स्थान पुराणों को दिये गए। वर्णसंरक का ज्ञातिभेद अटकाया गया। जैन और बौद्ध मतके अनुयायी होकर एकाकार संघमें मिले हुए लोगों को फिरसे अपने संघमें मिलाने की अवश्यकता हुई। उस समय के नियमानुसार फिर आनेवाले लोगों को किस वर्ण के गिने जावें, यह प्रश्न उपस्थित हुवा, तब एक नयी योजना निर्माण की गई, चतुर्वण के अतिरिक्त एक पंचम वर्ण की स्थापना की और उनका नाम 'सत् शूद्र (सच्छूद्र) रखने में आया। शूद्रों से इनको उच्च माना। कलियुग में क्षत्रिय और वैश्यों का लोप होना बताकर ब्राह्मण और शूद्र इन्हीं को वर्णों का अस्तित्व रक्खा। इस प्रकार क्षात्रिय वैश्योंको छुट्टी देकर ब्राह्मण सतशूद्र और शूद्र यही वर्णत्रयि स्थित की और जैन तथा बुद्ध धर्म से वापिस लौटनेवालों को सच्छूद्र वर्ण में स्थान मिला। विशेषतः जैन बौद्ध मतावलंबियों को निर्दोष निर्वाह मार्ग वाणिज्यही होने से प्रायः वे व्यापार करने लगे। यही आजकल की वणिक ज्ञातियां हैं। उक्त धर्म विप्लव विक्रम संवत पूर्व लगभग पानसो वर्षों से वि० सं० आठसो तक एवं बारह तेरहसो वर्षतक प्रचलित रहा। पश्चात् समयने फिरसे पलटा खाया। श्रीमद् शंकराचार्य के समय से ब्राह्मण धर्म की वृद्धि होने लगी। पुराणों में कई जगह कहा है कि, अमुक देवने आवश्यकतानुसार इतने क्षात्रिय उत्पन्न किये और

अमुक देवने इतने ब्राह्मण उत्पन्न किये। यह केवल अलंकार है। उत्पन्न किये याने कहीं आकाश वा पाताल से नही लाए अथवा काष्ट वा मृतिकाके नहीं बनाये। परंतु अबतक जो क्षत्रिय वा ब्राह्मण नहीं कहलाते थे उन्हें क्षत्रिय वा ब्राह्मण मानने लगे। निवास स्थानपरसे संघ स्थापित किये गए। जैन और बौद्ध संघमें मिलनेवाले ब्राह्मण, क्षात्रिय, वैश्य, निजी धन्दा छोडकर वणिक वृत्ति से रहने लगे। इस समय श्रीमालनगर भारत के प्रसिद्ध नगरों में से एक था। पट्टण की स्थापना न हुई थी; और वृद्धनगर (बडनगर) गुजरात में कोई (बडा शहर) नगर न था। श्रीमाल नगर गुजरात मारवाड की सरहद पर महान् समृद्धिशाली नगर था। वहां की राज सत्ता और व्यापार, अखिल गुजरात और मारवाड में फैला हुआ था। इसी कारण अन्य स्थान के निवासियों के सन्मुख श्रीमाल नगर-वासी अपने को श्रेष्ठ मानने लगे और उन्होंने अपने नगर के नाम का अपना गौरव पूर्ण जत्था कायम किया। वहां के ब्राह्मण, श्रीमाली ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हुए। व्यापारी श्रीमाली वणिक् (बनिये) इस नाम से जाने गये। सोनी श्रीमाली सोनी, पोरवाड श्रीमाली पोरवाड कहलाए। याद रहे, ऐसे नाम कहीं वाद विवाद कर निश्चित नहीं किये जाते। किन्तु ऐसे निगठित समूह को परगांव के लोक उनके नगर के नाम के साथ संबोधन करने लगते हैं और कालांतर से वह नाम निश्चित हो जाता है। उक्त श्रीमाल वणिक संघों में से ही पोरवाड ज्ञाति भी एक है।

श्रीमाल नगर तूटने के पश्चात् वहां के लोग पाटण, गुजरात, मारवाड, जांगल पद्मावती आदि अन्य स्थानों में जा बसे। पाटण और चांपानेर के राज्य तूटकर वहां की प्रजा दक्षिण गुजरात तथा अन्य दूर देशों में जा बसी, और जहां तहां अपनी दल बंदी (संघ) करके उन्होंने आपुस में सामाजिक व्यवहार प्रचलित किये। आज जैसे आवागमन के सुलभ साधन, शांतता तथा निर्भयता पहिले न होने से शनेः शनैः दूर गये हुए लोगों का गुजरात से व अपने मूल स्थान से संबंध स्थगित हुआ, वह अब तक वैसा ही है। पोरवाड लोक श्रीमाल से गुजरात, मारवाड, मेवाड, गोडवाड, जांगल पद्मावती आदि प्रांत वा नगरों में विभाजित हुए और ऊपर बताये हुए कारणों से एक प्रांतवालों का दूसरे प्रांतवाले से संबंध होना रुक गया। इस प्रकार वणिक् तथा अन्य ज्ञातियों में प्रांतवार और भी नये भेद हो गये।

---

(३)

श्रीमाल नगर।

प्रस्तुत इतिहास पोरवाड ज्ञाति का होने से उक्त ज्ञाति बन्धुओं को उनके मूल स्थान से परिचित कर देना तथा जन साधारण को पुराणों के अलंकार और श्रीमाल नगर के

ऐतिहासिक महत्व से परिचय करा देना यही निम्न पंक्तियां लिखने का उद्देश्य है।

अहमदाबाद अजमेर रेल्वे लाइन के पालनपुर और आबूरोड स्टेशन से पश्चिम की ओर लगभग चालीस माईल पर गुजरात मारवाड की सीमापर श्रीमाल नगर के प्राचीन खंडहर देखने में आते हैं। अन्य प्राचीन ज्ञातियों के मूल महास्थानों की जो दशा हुई हे उसी दशा को श्रीमाल नगर भी पहुँच चुका है। इस नगर पर अनेकबार परचक्र आये और अनेकबार उसका नाश हुआ। फिर भी अनेक अवस्थांतरों के पश्चात् उसका "भिन्नमाल" में नामांतर हुआ।

श्रीमाल पुराण, श्रीमाल नगर और निकटवर्ती तीर्थों के वर्णनार्थ तथा श्रीमाली ज्ञातिओं का ऐतिहासिक स्वरूप बताने के लिये ही रचा गया है। इसमें श्रीमाल नगर की स्थापना थेट कृतयुग 'सतयुग' में होना बताई है। विष्णुपत्नि लक्ष्मीदेवीने विष्णु से वरदान पाकर इस नगर को इंद्रपुरी समान सुशोभित बनाया। नगर वास्तुके समय ब्रम्हादि सर्व देव उपस्थित हुए और उन्होंने लक्ष्मी का पुष्पहार से आदर किया।

श्रियमुद्दिश्य मालाभिरावृत्ता भूरियं सुरैः।
ततः श्रीमाल नाम्न्यास्तु लोके ख्यातमिदंपुरं॥

श्रीमाल पुराण अ. ९ श्लोक ३६-३७.

श्री (लक्ष्मी) को देवोंने अर्पण की हुई पुष्पमाला से यह स्थान आवृत होगया, एतदर्थ इसका नाम श्रीमाल हुआ, ऐसा उक्त श्लोक का भावार्थ है। कृतयुग में पुष्पमाल, त्रेतामें रत्नमाल द्वापार में श्रीमाल और कलियुग में भिन्नमाल ऐसे चार नाम इस नगर के बताए हैं। परंतु यह कथा स्वयं विरोध उत्पन्न करती है। श्री लक्ष्मी इस नगर की स्थापना यदि कृतयुग में करती तो उसी युग में पुष्पमाल नाम रख्का होता तो वहां के नगर वासियों का नाम पुष्पमाली होना चाहिये था। ऐसा न होते द्वापारयुग के अंत में इसका नाम श्रीमाल हुआ है और उसी समय के पश्चात् वहां के नगर-वासि श्रीमाली कहाए हैं एवं श्रीमाल नगर की स्थापना द्वापार युग के अंतमें मानना अधिक योग्य होगा। विमल प्रबंध और विमल चरित्र में कहा है कि:—

श्रीकार स्थापना पूर्वं, श्रीमाले द्वापारांतरैः।
श्री श्रीमालि इति ज्ञाति, स्थापना विहिताश्रिया॥

(विमल प्रबंध)

× × × ×

भेटतणी लखिमी बावरी, श्रीप्रसाद सुरंगऊ फरी।
थापी मुरति मुहूरत जोई, लखिमि लक्षणवंती होई॥
द्वापरमांहि होई स्थापना, जेह नइ भय टालिया पापना।
श्री गोत्रज श्रीमाली तणी, करई चींत प्रासादह तणी॥

द्वापारयुग के अंतमें श्रीमाली ज्ञाति की स्थापना हुई; और तभी से श्रीमालियों की श्रीदेवी गोत्रजादेवी मानी गई।

नगर में रहने को श्रीदेवीने भिन्न भिन्न तीर्थों से चार वेद के विद्वान संख्याबंध ब्राम्हण बुलाए। अर्थात् वहां पर लक्ष्मीवंतों की वस्ती होने से उदरभरणार्थ चारों ओर से ब्राम्हण आए। और भी कहा है लक्ष्मीदेवीने धारण किये हुए हार में ब्राम्हणों का प्रतिबिंब देखकर हर्ष से लक्ष्मी के नेत्र अश्रुमय हुए। उस हार के अष्टदल कमल में पडे हुए ब्राम्हणों के प्रतिबिंब जीवित हो बाहर निकले। वे रेशमी वस्त्र रत्न, सुवर्ण और चंदन से सुशोभित थे। उन्होंने जब अपने नामकरण आदि की प्रार्थना की तो लक्ष्मीदेवी बोली कि, तुम सुवर्णपद्मों से उत्पन्न हुइ हो अतएव सुवर्णकार (सुनार) का धन्दा करके इस नगर में सोनी नाम से रहो। इस प्रकार आठ हजार चौसठ सोनी उत्पन्न हुए। फिर आगे कहा है। ब्राह्मणों के धन धान्य के रक्षण की चिंता से लक्ष्मीदेवीने अपनी जानु तरफ देखा और उसमें से धवल वस्त्र परिधान करने वाले, उम्बर का दंड तथा यज्ञोपवित धारण किये हुए नव्वे हजार वणिक पुत्र उत्पन्न हुए। उन्होंने अपने लिये काम की प्रार्थना करने पर श्रीविष्णुभगवान बोले कि:—

निप्राणामाज्ञया नित्यं वर्तितव्यमशेषतः ॥ २० ॥
पशुपाल्यं कृषिर्वात्ता वाणिज्यंचेतिवः क्रियाः।
अध्येषति द्विजा वेदान्यजिष्यंति समाधिना ॥ २१ ॥
तपस्यंति महात्मानो यजिष्यंति समाधिना।
गृहभारं समारोप्य युष्मासु प्रवीणेषुच ॥ २२ ॥

श्रीमाल पुराण की इस कथा में केवल ब्राह्मण ही मनुष्य हों और उन्ही के सुख के वास्ते औरों की उत्पत्ति हुई ऐसा दिखाया है। हरएक मनुष्य अपने जीवन के लिये स्वतंत्र होता है; परंतु पुराण विपरीत ही बताते हैं। इस कथा परसे हमें इतना ही लेना चाहिये कि श्रीमाली सोनी ब्राह्मणों के प्रतिबिम्ब से याने उन्हों के अनुलोम संबंध से हुए; और वे नियमानुसार निम्न वर्णके होने के कारण यज्ञोपवित धारण नहीं कर सकते। वैसेही वणिक ज्ञातिकी उत्पति में उन्हें यज्ञोपवित सहित बताये हैं। स्कंधपुराण के सह्याद्रि खंड में तथा "जातिविवेक" नामक मिश्र जातियों के संग्रह ग्रंथ में सोनियों की निम्नोक्त उत्पत्ति बताई है:—

शूद्रा शयनं आरोह्य ब्राह्मणाश्च कथंचन।
जनयेद ग्राम्य धर्मेण तस्य पार सवं सुतं॥
महाशूद्रस्य विख्यातः शूद्रेभ्यः किंचिदुत्तम?।
स्वर्णकारस्य तस्येह स्नानं धेत्रं पवित्रकं॥
सैव शूद्रस्य धर्मेण वर्तनं तस्य च स्मृतं।

(जाति विवेक)

एक कथा ऐसी भी बताती है कि, श्रीमल्ल राजाने यह नगर बसाकर उसका श्रीमाल नाम रक्खा। इस कथानुसार लक्ष्मी श्रीमल्ल राजा की पुत्री थी, और उसका आबू के परमार राजा के साथ विवाह किया गया था। अस्तु।

श्रीमाल नगर लक्ष्मी का बसाया हो वा श्रीमल्ल का बसाया हुआ हो वहां लक्ष्मी का वास्तव्य अवश्य था। यथा—

एतदेव विप्राणा श्रीमालन्नाम पत्तनम ।
यत्रोर्व्या खनमानायां पुरा रत्नानि निर्मयुः ॥ २२ ॥

(श्रीमाल पुराण)

उक्त श्लोक खुलं खुल्ला बताता है कि नगर के आसपास सुवर्णादि रत्नों की खदाने थी। सोना तथा रत्नादिक प्रत्यक्ष लक्ष्मी रूप ही होते हैं। श्रीमाल की भूमि में ऐसे बहुमूल्य पदार्थ भरे पडे थे; इसी कारण उसे लक्ष्मी का प्रियस्थान जानना अस्वाभाविक नहीं; और लक्ष्मी वहां वास करती थी वह भी असत्य नहीं! उस भूमि में लक्ष्मी भरपूर होने से स्वभावतः चहु ओर से लोकवहां आकर बसे। अर्थात् लक्ष्मीने वह नगर बसाया ऐसा लिखना अयथार्थ नहीं। लक्ष्मी के बल क्या नहीं होता !! लक्ष्मीने बडे बडे शिल्पशास्त्री (विश्वकर्मा) को वहां बुलाये। लक्ष्मीही के कारण श्रीमाल नगर इंद्रपुरी जैसा बना इस में आश्चर्य क्या ? न्यूयार्क, लंदन, पॅरिस, बंबई, कलकत्ता आदि प्रेक्षणीय नगर लक्ष्मीके प्रभावसेही तो बने हैं। जहां लक्ष्मी हो वहां उस के पुजारी व्यापारी (वणिक् पुत्र) होतेही हैं। अतएव श्रीमाली लोगोंकी श्रीदेवी इष्ट देवता (गोत्रदेवी) लिखना यथार्थ है। जब श्रीमालनगर श्रीमानोंका निवासस्थान था तो फिर वहां सोनियोंका अधिक वास होना भी संभवनीय है; और उनको अधिक आमदनी

होना याने उन पर लक्ष्मी की कृपा होना ठीकही है। अब रहे ब्राह्मण। उस समय ब्राह्मणों को भूदेव कहा जाता था। इन के बिना कोई कार्य न होता था। लक्ष्मी के कृपापात्र लोक (श्रीमंत लोक) धर्म से उदासीन नहीं रह सकते। इन लोगों के धर्म कृत्योंके वास्ते और खासकर अपनी पूर्ति के वास्ते चहूं ओर से ब्राह्मण आकर्षित होना आश्चर्य नहीं। श्रीमाल नगर समृद्धिशाली होने से इस पर कई लोगोंने आक्रमण किया। शनैः शनैः सुवर्णादि रत्नोंकी खदाने रिक्त हो गईं, और कालकी विकराल दंष्ट्रा में श्रीमाल नगर नामशेष होगया।

पहिले बताया हुआ श्रीमाल नगर बसानेवाला राजा श्रीमल्ल को गौतम स्वामीने जैनों के तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामी के शिष्य थे, जैन-धर्म की दिक्षा दी थी।

वि० संवत ११७६ से मारवाड गुजरात में द्वादश वर्षीय दुष्काल पडा तब से शनैः शनैः यह नगर शून्य होता चला। नगरवासि गुजरात, काठियावाड, जांगल, पद्मावती, मारवाड आदि स्थानों में चले गये। अधिक तर वनराज के बसाये हुए पट्टण में यहां के श्रीमान तथा माननीय लोक जा बसे। तब से श्रीमाल की अवनती ही होती गई। वहां से लक्ष्मी रुष्ट हो गई सबब श्रीमाल नाम बदल कर उस नाम का भिन्नमाल में परिवर्तन हुआ। यह भिन्नमाल छोटे कसबे के रूप में अब भी उसी स्थान पर स्थित है।

श्रीमाल से निकले हुए लोक अधिक तर गुजरात और मारवाड में वसे यह उपर कहा जा चुका है। गुजरात में पाटण की स्थापना के पहिले श्रीमाल नगर धन धान्य, आबादि व्यपार तथा राज–सत्ता से सर्वतया संपन्न था परंतु वह समृद्धि नष्ट होगई। पाटण में जो भी सुवर्ण रत्नादि की खदान न थी। तो भी वह महान प्रभावशाली राजाओं का राज-नगर था, और—

राजद्वारे महालक्ष्मी व्यापारेण तथैवच।

इस न्यायसे वह लक्ष्मी का धाम था। श्रीमाल नगर तूट कर वहां के निवासी पाटण में जा बसे अर्थात् श्रीमाल पुराण के कथनानुसार श्रीमाल की लक्ष्मी पाटण में आई।

पोरवाड ज्ञाति की उत्पत्ति।

पोरवाड ज्ञाति का श्रीमाल नगर से बहुत घनिष्ट संबंध है; श्रीमाली तथा ओसवाल महाजनों का आपुस में तथा श्रीमाल नगर से जिस प्रकार का संबंध है उस से बिलकुलही निराले प्रकार का पौरवाडों का श्रीमाल से है। ओसवालों का मूल श्रीमालियों में है, किन्तु पोरवाडों की शाखाएं श्रीमालियों के संगठन में सम्मिलित हुई हैं। ओसवालों की

उत्पत्ति श्रीमाल से जाकर ओसिया में वसने के पश्चात् रत्न-प्रभ सूरि के समय श्रीवीरात् ७० विक्रम संवत् पूर्व चारसो वर्ष और इसवी सन पूर्व ४५७ वे वर्ष में हुई है। जैनों के तेईसवें तर्थिकर श्रीपार्श्वनाथ भगवान से रत्नप्रभ सूरि छटे पाटवी हुए।

इतिहास लेखकों में उक्त समय की गणना में कुछ मत भिन्नता है। History and Literature of Jainism के लेखक मि. व्ही. डी. बरोदिया ने श्रीपार्श्वनाथ भगवान का जन्म ई० के पूर्व ८१७ में होना लिक्खा है। इसको प्रमाण-भूत मानकर यदि हिसाब लगावें तो काल गणना में महदंतर है। आज महावीर संवत २४५६ ई० स० १९२९ वि. स. १९८६ है। श्री महावीर की आयु बहत्तर वर्ष की थी। श्री पार्श्वनाथ की आयु १०० वर्ष की थी। इस हिसाब से—

१०० वर्ष पार्श्वनाथ की आयु.	एकंदर २८७८ वर्ष हुए.
२५० वर्ष पश्चात् महावीर का जन्म.	
७२ वर्ष श्रीमहावीर की आयु.	
२४५६ वर्ष श्रीमहावीर के निर्वाण को हुए.	

इन २८७८ में से ई० सन् के १९२९ घटाने से ९४९ वर्ष बाकी रहे। अर्थात् ई० स० पूर्व ९४९ वें वर्ष में श्रीपार्श्वनाथ का जन्म होना निश्चित होता है। ई० स० पूर्व ५९९ वें वर्ष में श्रीमहावीर का जन्मकाल तथा ई० स० पूर्व

५२७ वें वर्ष में श्रीमहावीर का निर्वाण काल निश्चित होता है। एवं ऊपर कहे अनुसार श्री वीर संवत ७० याने ई. स० पूर्व ४५७ वें वर्ष में ही ओसवालों की उत्पत्ति निश्चित हुई।

पोरवाड ज्ञाति की उत्पत्ति के संबंध में जो जो भिन्न भिन्न प्रमाण उपलब्ध हुए हैं वे प्रथम जैसे के तैसे पाठकों के सन्मुख रखकर उनमें से सयुक्तिक प्रमाण सिद्ध और विश्वास पात्र कौनसा है इस संबंध का समालोचनात्मक विचार आगे करेंगे।

श्रीमाल पुराण में लिखा है कि श्री विष्णु ने श्रीमाल नगर में ४५ हजार ब्राह्मण और ८० हजार व्यवहारियों को बसाये। पश्चात् दो व्यवहारी के साथ एक ब्राह्मण के पालन का नियमन किया। इस अवस्था में १० हजार व्यवहारी की कमि रही। तब भगवान, गंगा यमुना के दोआब में राज्य करने वाले पुरखा राजा के पास गये और कहा कि श्रीमाल में मुझे चौरासी ज्ञातियों की स्थापना करना है। इसमें दस हजार व्यवहारियों की कमि आई है। अतएव तुह्मारी प्रजा में से दसहजार पुरुष दो। राजा ने उत्तर दिया कि मैं मेरे पुत्रों को वहां बसने को भेजता हूं; परंतु वे अंत्यज [पीछे की प्रजा] गिने जावेंगे। तब श्री विष्णु ने कहा कि ऐसा नहीं होगा। वह उच्च ज्ञाति ही रहेगी। इस प्रकार समझाकर भगवान ने दसहजार पुरुषों

को साथ लाकर श्रीमाल नगर में बसाये और चौरासी ज्ञाति की स्थापना करते समय इनका नाम "प्राग्वाट" रखा। प्राग=पूर्व दिशा। वाट=वाडा, वसतिस्थान। श्रीमाल से गंगा यमुना का दोआब पूर्व दिशा में है। उक्त दस हजार योद्धा पूर्व से आये। अतः "प्राग्वाट" कहाये जैसे अब भी "दक्षणी" पुरबिये आदि संज्ञाएं हैं।

दूसरी एक कथा ऐसी भी है कि, परमार राजा जयसेन के दो पुत्र भीमसेन और चन्द्रसेन थे। चन्द्रसेन ने चंद्रावती बसाकर वे वहां राज्य करने लगे और भीमसेन का पुत्र पुंज और उसका भाई [श्रीकुमार] उप्पलदेवकुंवर रुष्ट होकर श्रीमाल नगर से जाने के पश्चात् इस नगर की स्थिति बहुत चिंता जनक होगई। वहां चहुंओर से लुटेरे डाकुओं ने नगर को लूटना आरंभ किया। इस संकट से बचने के लिये वहां के महाजन लोगों ने चक्रवर्ती पुरुखा राजा की मदत लेना निश्चित किया। वे लोग चक्रवर्ती के पास गये और अपनी दुःखदवार्ता उन्हें सुनाकर पुरखा राजा ने अपने निजी दसहजार योद्धा श्रीमाल नगर का रक्षण करने को भेज दिये। उक्त योद्धाओं के आने से नगर-वासियों का दुःख नष्ट हुआ, और वे आनंद से रहने लगे। ये योद्धा नगर के बाहर पूर्व की ओर आकर हठरे थे। वहां अम्बिकादेवी का एक मंदिर था। सुभट गण उस देवी

की पूजा करने लगे। वे लोग जहां जहां गये सर्वत्र विजयी हुए अतएव दिवाली पर उन्होंने देवी की महापूजा की। देवी उस पूजा से तुष्टमान हुई और उसने एक रात्रि में सात दुर्ग निर्माण करके इन लोगों को कहा कि तुम इन दुर्गों में रहकर मेरी पूजा करते जाओ। तुम्हारा सर्वत्र विजय होगा।

ऊपर की दोनों कथाओं का विचार करने से और उसमें का अलंकारिक अंश छोड देने से ज्ञात होता है कि उक्त दसहजार क्षत्रिय पुरखा के भेजे हुए अवश्य थे। वे पूर्व से श्रीमाल नगर में आये थे और इसीलिये "प्राग्वाट" कहाये थे।

पोरवाड ज्ञाति के लोगों के जो अन्य अनेक प्रशस्तियां शिलालेखादि प्रमाण मिले हैं उनमें से लगभग तीनसो वर्ष पहिले के लेखों में "पोरवाड" इन शब्दों की जगह "प्राग्वाट" शब्द का ही प्रयोग किया गया है। यह शब्द संस्कृत है। परंतु जब संस्कृत का प्रचार कम होने लगा और हिन्दी आदि भाषाएं प्रचलित हुई तब उसी का रूपांतर पोरुवाड–पोरवाड हो गया। दूसरे 'पौरवाल' शब्द में 'पौरव' शब्द खुल्ला खुल्ला दिख रहा है, और उक्त कथाओं से भी इनका पुरु वंशीय होना सिद्ध होता है। अतएव 'पौरवाल' यह शब्द इस ज्ञाति का पुरुवंशीय होने का भी द्योतक है।

पोरवाड ज्ञाति में लग्नादि शुभ प्रसंग पर निम्न सुप्रभातिया गाया जाता है:—

सजनी नी कूंख सुलक्षणी जी जेने (नाम) जाया ।
तेडो आयो राज को आदर से बुलाया ॥
घोडा दीधा हंसला ऊपर जीन सजाया ।
घुडलानी करो बेन्या आरती बीरो गढ जीति आया ॥

यह भी पोरवाडों का क्षत्रिय होना सिद्ध करता है। इस ज्ञाति की लग्न विवाह की रीति भी इन्हें राजपूत सिद्ध करती है ।

"प्राग्वाट" शब्द की उत्पत्ति तो ऊपर लिखी जा चुकी परंतु इसके संबंध में एक निम्न मतभेद प्रसिद्ध हुआ है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका द्वितीय भाग संवत् १९७८ में श्रीयुत् महा महोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकरजी ओझा पृष्ट ३३६ में लिखते हैं किः— "करनवेल [जबलपुर के निकट] के एक शिलालेख में प्रसंग वशात् मेवाड के गुहिल वंशी राजा हंसपाल, वैरीसिंह और विजयसिंह का वर्णन मिलता है। इसमें उनको "प्राग्वाट" का राजा कहा है। यथाः—

प्राग्वाटे वनिपाल भाल तिलकः श्रीहंसपालो भवत्तस्माद-
भूभृदसुत सत्य समितिः श्रीवैरिसिंहाभिधाः ॥

इंडि. एंटि. जि ७–१८ पृ. २१७.

अर्थात् 'प्राग्वाट' मेवाड [मेदपाट] का ही दूसरा नाम होना चाहिये। संस्कृत के शिला लेखों में तथा पुस्तकों में 'पोरवाड' महाजनों के लिये 'प्राग्वाट' नाम का प्रयोग मिलता है। वे लोग अपना निकास मेवाड के पुर कस्बे से बतलाते हैं। जिससे सम्भव है कि प्राग्वाट देश के नाम पर से वे अपने को प्राग्वाट वंशी कहते रहे हों।" [ना. प्र. पत्रिका भाग २/१९७८ पृ. ३३६]

पोरवाडों का पुर कस्बे से निकास होना संभवनीय नहीं मालूम होता। क्योंकि पुर कोई नगर वा बडा ग्राम होना कहीं भी नहीं पाया जाता। छोटे से कस्बे के पांच पच्चीस घरों में से इतनी बडी ज्ञाति बनना शक्य नहीं। दूसरे प्राग्वाटों के लगभग पांचसो सातसो लेख देखने में आये उनमें केवल एकही लेख ऐसा मिला है कि जिसके निर्मिता 'पुर' वासी थे।

लेख।

जेसलमीर के चन्द्रप्रभा स्वामी के मन्दिर में पञ्चतीर्थि पर.

"सं. १५१८ वर्षे महा सुदी १३ गुरौ प्राग्वाट ज्ञातीय व्य० पूंजा भा० जासु सुत व्य० वाछा केन भा० बाछू पुत्र मेला क्रंरपाल युतेन श्वश्रेयसे जीवित स्वामी चंद्रप्रभा बिंब कारितं कुल क्रमायात् गुरुभिः श्री पूर्णिमा पक्षे भीमपल्लीय भट्टारक श्री जयचन्द्र सूरिभिः प्रतिष्ठितं.....पुरवास्तव्य।"

केवल एक घर वाले पुरवासी पाये जाने से समस्त ज्ञाति 'पुर' से निकाली ऐसा अनुमान कैसे किया जावे ? इसके अतिरिक्त और कोई भी विश्वसनीय प्रमाण अभी इस संबंध का उपलब्ध नहीं हुआ ।

कई पोरवाड ज्ञातीय वृद्ध सज्जनों से ज्ञातिका मूलस्थान का प्रश्न करने पर वे सिरोही बताने लगे परंतु वास्तव में यह भी ठीक नहीं है । क्योंकि सिरोही राज्य का कामद्रा ग्राम का शिलालेख बताता है कि उस लेख के निर्मिता सज्जन भिन्नमाल से सिरोही आये । अर्थात् सिरोही पोरवाडों का मूलस्थान नहीं । एवं दो चार मनुष्यों के कहने पर पोरवाड ज्ञाति का मूलस्थान निश्चित करना योग्य नहीं ।

अब मेवाड को " प्राग्वाट " कहने के संबंध में भी जरा मतभेद है । " मेदपाट " का " मेवाड" में रूपांतर होना जितना सहज है उतना दूसरे शब्द का शक्य नहीं । "प्राग्वाट" का अर्थ पूर्व प्रदेश [स्थान] होता है । एवंमेवाड को प्राग्वाट केवल वेही लोग कहेंगे कि जिनके निवास स्थान से मेवाड पूर्व में हो परंतु भारत का एक प्रदेश ऐसा है कि जो प्राचीन काल से आजतक पूरब [पूर्व] के नाम से जाना जाता है और वहां के निवासी भी पुरबिये कहे जाते हैं । पूर्व प्रदेश का प्राग्वाट तथा पुरबिये का प्राग्वाट अनुवाद बिलकुल यथार्थ है । पुरुखा चक्रकर्ती थे और उनका राज्य

निवास गंगा जमुना के दोआव में था यह भारतादि ग्रंथों में दिया है अर्थात् पुरुखा के भेजे हुए योद्धा पूर्वसे आने के कारण प्राग्वाट कहावें तो आश्चर्य नहीं।

मेवाड के गुहिल वंशी राजा हंसपाल को "करनवेल" के शिलालेख में प्राग्वाट का राजा कहा है। इससे मेवाड का नाम "प्राग्वाट" होनेका अनुमान न करते मेदपाट के राजा हंसपालादि प्राग्वाट के भी राजा होने का अनुमान करना अधिक यथार्थ होगा। क्योंकि गुहिल वंश में कई राजा बहुत प्रतापि हो चुके हैं। संभव है कि, प्राग्वाट–पूर्व प्रदेश भी उन्होंने हस्तगत किया हो। जबलपूर (करनवेल) का उस समय पूर्व प्रदेश में समावेश था। लेख लेखन के समय वहां का राज्य गुहिल राजाओं की सत्ता में होने से वहां के लेखक ने उन्हें अपना राजा [मातहती के कारण] संबोधित करना श्रेयस्कर था, और इसी से वे "प्राग्वाटे वनिपाल" कहाये हों क्योंकि, राणपुर [मारवाड] तीर्थ का प्रसिद्ध मुख्य मंदिर जो कि प्राग्वाट वंशी संघवी रत्नासाका बनाया है उसकी प्रशस्ति में संघवी रत्नासा के वंश को प्राग्वाट वंशी बताया है। परंतु प्रशस्ति के आदि में गुहिल वंश की संपूर्ण वंशावली देते समय उन्हें प्राग्वाट के राजा न बताते केवल "मेदपाट राजाधिराज" ऐसा लिखा है। इसी प्रशस्ति में आगे बढकर ४१ वे राजा "कुंभकर्ण" के वर्णन में उन्हें:—

"विषम तमा भंग सारंगपुर, नागपुर, गागरण, नराणका, अजय मेरु, मंडोर, मंडोरकर, बूंदि, खाटु, चाट, सुजानादि

नाना दुर्ग लीला मात्र ग्रहण प्रमाणित जित काशित्वाभिमानस्य। निज भुजोर्जित समुपार्जितानेक भद्र गजेन्द्रस्य। म्लेंछ महिपाल व्याल चक्रवाल विदलन विहंग मेन्द्रस्य······आदि।

ऐसे प्रतापि लिखे हैं तो संभवनीय है कि "प्राग्वाट" भी कोई समय इनोंने पादाक्रांत किया हो।

पाठकों के अवलोकनार्थ संपूर्ण प्रशस्ति नीचे दी जाती है,

रेनपुर तीर्थ–मंदिर की प्रशस्ति।

"स्वस्ति श्री चतुर्मुख जिनयुगादिश्वरायनमः"

श्रीमद्विक्रमतः १४९६ संख्य वर्षे श्रीमेदपाट राजाधिराज श्रीवप्प १ श्रीगुहिल २ भोज ३ शील ४ काल भोज ५ भर्तृभर ६ सिंह ७ सहायक ८ राज्ञी सुत युतस्य सुवर्ण तुला तोलक श्री खुम्माण ९ श्रीमदल्लट १० नूरवाहन ११ शक्तिकुमार १२ शुचिवर्म १३ कीर्तिवर्म १४ जोगराज १५ वैरट १६ वंशपाल [हंसपाल] १७ वैरिसिंह १८ वरिसिंह १९ श्री अरिसिंह २० चोडसिंह २१ विक्रमसिंह २२ रणसिंह २३ क्षेमसिंह २४ सामंतसिंह २५ कुमारसिंह २६ प्रथमसिंह २७ पद्मसिंह २८ जैत्रसिंह २९ तेजस्विसिंह ३० समरसिंह ३१ चहुमान श्री कौतूक नृप श्री अल्लावदीन सुरत्राण जैत्रवप्प वंश श्री भुवनसिंह ३२ सुत श्री जयसिंह ३३ मालवेश गोगादेव जैत्र श्रीलक्ष्म[ण]सिंह ३४ पुत्र अजयसिंह ३५ भ्रातु श्रीअरिसिंह

३६ श्री हमीर ३७ श्री खेतसिंह ३८ श्री लक्ष्महूय नरेंद्र ३९ नंदन सुवर्ण तुलादि दान पुण्य परोपकारादि सारगुण सुर द्रुम विश्राम नंदन श्री मोकल महिपति ४० कल कानन पंचाननस्य। विषम तमा भंग सारंगपुर नागपुर गागरण नराणका अजयमेरु मंडोर मंडलकर बूंदि खाटु चाट सुजानादि नाना दुर्ग लीला मात्र ग्रहण प्रमाणित जित काशित्वाभि मानस्य। निज भुजोर्जित समुपार्जितानेक भद्र गजेन्द्रस्य म्लेच्छ महिपाल व्याल चक्रवाल विदलन विहंगमेन्द्रस्य। प्रचंड दोर्दंड खंडिताभिनिवेश नाना देंश नरेश भाल माला ललित पादारविंदस्य। अस्खलित ललित लक्ष्मी विलास गोविंदस्य। प्रबल पराक्रमांत ढिल्ली मंडल गुर्जरत्रा सुरत्राण दत्तात पत्तु प्रथित हिंदु सुरत्राण विरुदस्य सुवर्ण सत्रागारस्य षड्दर्शन धर्माधारस्य चतुरंग वाहिनी वाहिनी पारावारस्य कीर्ति धर्म प्रजा पालन सत्रादि गुणक्रियमान श्रीराम युधिष्ठिरादि नरेश्वरानु कारस्य राणा श्री कुंभकर्ण सर्वोर्विपति सार्वभौमस्य ४१ विजय-मान राज्ये तस्य प्रसाद पात्रेण विनय विवेक धैर्योदार्य शुभ कर्म निर्मल शीला द्यद्भुत गुणमणीमया भरण भासुरगात्रेण श्रीमद-हम्मद सुरत्राण दत्त फुरमाण साधु श्रीगुणराज संघ पति साहचर्य कृताश्चर्यकारी देवालयाडंबर पुरासर श्रीशत्रुंजयादि तीर्थ मात्रेण अजाहरी पिंडर वाटक सालेरादि बहुस्थान गवीन जैन विहार जीर्णोद्धार पदस्थापना विपम सषय सत्रागार नाना प्रकार परोपकार श्री संघ सत्काराद्य गण्य पुण्य महार्थ क्रयाणक

पूर्यमाण भवार्णव तारण क्षम मनुष्य जन्मथान पात्रेण प्राग्वाट वंशावतंस सं. सागर [मांगण] सुत सं. कुरपाल भा. कामलदे पुत्र परमार्हत धरणा केन ज्येष्ट भ्रातृ सं. रत्ना भा. रत्नादे पुत्र सं. लाखा म [स] जा सोना सालिग स्व. भा. स. धांरलदे पुत्र जाज्ञा जावडनि प्रवर्द्धमान संतान युतेन राणपुर नगरे राणा श्री कुंभकर्ण नरेन्द्रेण स्वनाम्ना निवे शितेतदीय सुप्रसादा देशत त्रैलोंक्य दीवकाभिधानः श्री चतुर्मुख युगादिश्वर विहार करितः प्रतिष्ठितः श्री वृहत्तपा गच्छे श्री जगच्चंद सूरि श्री देवेन्द्र सूरि संताने श्रीमत् श्री देव सुंदर सूरि पट्ट प्रभाकर परम गुरु सुविदित पुरंदर गच्छाधिराज श्री सोमसुंदर सूरिभिः ॥ कृतमिदंच सूत्रधार देपाकस्य अयंच श्री चतुर्मुख विहाराः आचंद्रार्कं नंदाताद।

॥ शुभं भवतु ॥

अतः उपलब्ध प्रमाणों से प्राग्वाट पूर्व से पुरुखा की ओर से आये हुए ही सिद्ध होते हैं। पोरवाड शब्द प्राग्वाट से और पोरवाल शब्द से पौरव कुल के होना निश्चित होने के पश्चात अब हमें देखना है कि ये लोक क्षत्रिय होते हुए कब और क्यों वणिक महाजन बने और क्षात्र वृत्तिका त्याग क्यों किया ? इस संबंध का अभी एक ही प्रमाण उपलब्ध हुआ है। वह है कप्प सूरिकृत पट्टावली। यह जो भी इतनी विश्वसनीय नहीं तो भी अन्य प्रमाणों के अभाव में इसे प्रमाणभूत क्यों न माना जावे ? उक्त पट्टावली में लिखा है

कि रत्नप्रभ सूरी के पूर्व के, श्री पार्श्वनाथ भगवान से पंचम पाटवी श्री स्वयंप्रभ सूरि वीर संवत ५२ तक थे। इन के पश्चात वीर संवत ५२–८४ तक श्री रत्नप्रभ सूरि पट्टाधीश रहे। एक समय श्रीमाल नगर में यज्ञ हो रहा था कि श्री स्वयंप्रभ सूरि वहां पहुंचे और वहां के लोगों को उपदेश देकर अनेक क्षत्रियों को जैन बनाये और महाजन संघ की स्थापना की। इसी समय वहां के प्राग्वाट क्षत्रिय भी जैन बने और वणिक वृत्ति से रहने लगे। परंतु हिंसा के अतिरिक्त इन्होंने क्षत्रियोचित कोई भी कर्म का त्याग नहीं किया था। इस संबंध का विवरण अन्यत्र किया है।

जब वि. सं० ८०२ में वनराजनें अणहिलपुरपट्टण की नीव डाली। पाटण के राज्य दरबार में श्रीमाली तथा पौरवालों का बहुत मान सन्मान था। और अच्छे २ स्थानों पर ये लोग विराजमान थे। श्रीमाली और पोरवाड गुजरात में साथ साथ आये श्रीमाल में साथ रहे। पाटण में साथ गए और साथ साथ राज कार्य करते रहे। [देखो विमल प्रबंध और प्रबंध चिंतामणि].

पोरवाड़ भिन्नमाल से निकलकर सिरोही आदि आस पास के प्रदेशों में जा बसने का एक प्रमाण नीचे दिया जाता है।

शिला लेख—कामद्रा ग्राम—सिरोही राज्य.
संवत १०९१.

"ॐ। श्रीभिन्नमाल निर्यातः प्राग्वाट वणिजावरः श्रीपति रिव लक्ष्मा युग्गो ल (च्छीं) राजपूजितः ॥ अकारो गुण रत्नानां बन्धु पद्म दिवाकरः ज्जुजकस्तस्य पुत्र स्यात नम्म राम्मै ततौ परौ ॥ जज्जुं सुत गुणोद्य वामनेन भसाद्भूयं। दृष्टवा चक्रे गृहं जैन मुक्त्यै विश्व मनोहरं ॥ संवत १०९१ .....सपुने.....।

पोरवाडों के कुलगुरु (गोर) श्रीमाली ब्राह्मण हैं। यह भी पोरवाड ज्ञाति की श्रीमालियों से ऐक्यता का तथा उनका महाजन होने के बाद का मूलस्थान श्रीमाल होने का एक सबल प्रमाण है।

आजकल भी भिन्नमाल के आसपास के प्रदेश में पोरवाडों की अधिक वस्ती है। उक्त सब बातें यही सिद्ध करती है कि श्रीमाली तथा पोरवाडों का बहुत समय तक घनिष्ट संबंध रहा है। इन दोनों में उस समय ऐक्य होना स्वाभाविक है। जब ज्ञाति बंधन बहुत संकुचित और जड हुए तब ये दोनों ज्ञातियां पृथक भले ही मानी गई हों परंतु पहिले इन लोगों में किसी प्रकार का भेदभाव न था। श्रीमालियों से तो ठीक ही किन्तु पोरवाड ज्ञाति के प्रसिद्ध सेनापति वस्तुपाल की दूसरी स्त्री सुहड़ा देवी पत्तन के रहने वाले मोढ जाति के महाजन ठक्कुर (ठक्कुर) जाल्हण के पुत्र ठक्कुर आसाकी पुत्री थी। इस संबंध का शिलालेख, वस्तुपाल तेजपालने आबूपर बनवाए

हुए मुख्य मंदिर के द्वार के दोनों ओर के ताकों में से एक ताक में अब भी है* । इससे पाया जाता है कि उस समय

* इन दोनों ताकोंपर एक ही आशय के (मूर्तियों के नाम अलग) लेख खुदे हैं । इनमें से एक की निम्नोक्त नकल है:—

" ॐ संवत १२९० वर्षे वैशाख वदी १४ गुरौ प्राग्वाट ज्ञातीय चंड प्रचंड प्रसाद महं श्री सोमान्वये महं श्री आसाराज सुतमहं श्री तेजपालेन श्री मत्पत्तन वास्तव्य मोढ ज्ञातीय ठ० जाल्हण सुत ठ. आस सुताया ठकुराज्ञी संतोषा कुक्षी संभूताया महं श्री तेजपाल द्वितीय भार्या महं श्री सुहडा देव्या: श्रेयोर्थं......... (यहां से आगे का हिस्सा टूट गया है परंतु दूसरे ताक के लेख में वह इस प्रकार है । " एत त्रिगदेव कुलिका खत्तकं श्री अजितनाथ बिंबंच कारितं । "

इस लेख में जाल्हण और आस को ठ [ठकुर ठाकुर] लिखा है । इस कारण यह अनुमान किया जाता है कि वे जागीरदार हों । दूसरे लेखों में वस्तुपाल के पिता आसराज वगैरा को भी ठ. लिखा है । राजपुताना और मालवे में अबतक जागीरदार चारण कायस्थ जागीरदारों को ठकुर ही कहते हैं । देवास [मालवा] के प्रसिद्ध पोरवाड कुल को अब भी ठाकुर पदवी है । ये देवास राज्य के जागीरदार तथा चौधरी होकर इन्हें राज्य दरबार में बहुत मान सन्मान मिलता है ।

आबू के उक्त लेख में तथा अन्य कई लेखों में नामों के पहिले "महं" लिखा मिलता है जो " महत्तम के " प्राकृत रुप " महंत " का संक्षिप्त रुप होना चाहिये । " महत्तम " [महंत] उस समय का एक खिताब होना अनुमान होता है, जो प्राचीन काल में मंत्रियों (प्रधानों) आदि को दिया जाता हो । राजपुताना और गुजरात में अबतक कई महाजन " मूता " और " महता " [मेहता] कहलाते हैं, जिनके पूर्वजों को यह किताब मिला होगा; जो पीछे से बंशपरंपरागत होकर वंश के नाम का सूचक होगया हो । " मूता " और " महता " यह दोनों महत्तम [महंत] के अपभ्रंश होना चाहिये.

[सिरोही का इतिहास—गौरीशंकरजी ओझा कृत].

महाजन ज्ञातियों में परस्पर बेटी व्यवहार की रोक न थी। श्रीमाली और पोरवाड ज्ञातियां बहुत उच्च श्रेणि की गिनी जाती थी। उनमें भी पोरवाड भिन्नमाल के रक्षण कर्ता होने के कारण सब से अधिक सन्माननीय थे। पोरवाड लोग दानशूरता में भी कुछ कम न थे! प्रायः सभी जैन तीर्थों में इनके बनाये मंदिर, मूर्तियां, जीर्णोद्धरित जिनालय, दानशालाएं आदि आज भी इस बात का प्रमाण हमें दिखा रहे है। विमलशाह, वस्तुपाल, तेजपाल, धरणासा, रत्नासा, पेथडशाह आदि लक्ष्मीपुत्रों के बनाये प्रेक्षणीय, प्रशंसनीय, कलाकुशलता में संसार भर में उच्चतम ऐसे मंदिर आज भी इस बात की साक्षी देते हैं।

पोरवाड महाजन बहादुरी में भी कुछ कम न थे। इनों की बदादुरी की वार्ता में विमलशाह तथा वस्तुपाल तेजपाल का नाम निकले बिना नहीं रहता। कोई चारण का पुराना दोहा है:—

मांडी मुर कीरई करई, छांडिय मांस ग्राह,
विमलडी खंडउ कढ्ढीउं, नट्ठउ वाली नाह,

उक्त दोहे की वार्ता ऐसी है कि, आबूपर विमलशाह जब मंदिर बंधवाने लगे तो उस स्थानका अधिष्ठाता नागराज वालीनाथ बलीदान न मिलनेके कारण हर समय रातको बंधान गिराने लगा। एक रात्री को विमलशाह वहां दबकर बैठा और जब नागराज वहां आया तो खांडा खींचकर उसको

मारने को दौडा । इस प्रकार नागराज की अकल विमलशाह ने ठीक की ।

विसलदेव के मंत्रित्व के काल में तेजपाल वस्तुपाल ने सारा गुजरात काठियावाड लाट वाकल आदि प्रदेशोंमें अनेक संग्राम करके गुर्जरेश्वरका प्रभुत्व कायम किया । बने वहांतक सामोपचार का वे उपयोग करते; परंतु युद्ध प्रसंग वा बहादुरी का प्रसंग आने पर वे कभी पीछे न हटते । इसी प्रकृति के कारण पौरवाडों को उस समय "प्रगट मल्ल" सच्चे योद्धा की पदवी दी गई है । कहा है:—

रणि राउला शूरा सदा, देवी अंबावी प्रमाण
पोरूआड परगट मल्ल, मरणिन मूके माण.

अर्थात् पोरवाड रण सदा शूर और सच्चे योद्धा होते हैं वे मान के वास्ते प्राण भी समर्पण कर देते हैं।

ऊपर कहे अनुसार पोरवाड लोगों ने मंदिर बंधवाने में भी बहुत कीर्ति मिलाई है। जिन जिन मंदिरों को देखकर सारा संसार दिग्मूढ हो रहा है उन आबू, गिरनार, राणपुर तथा कुंभारिया के अद्भुत तथा आश्चर्य जनक मंदिर पोरवाडों के ही बनवाये हैं ।

जावडशाह नाम के पोरवाड ने संवत १०८ में शत्रुंजय के मंदिर का जीर्णोद्धार किया था । अर्थात् मंदिरोंका यदि

इतिहास लिखाजावे तो प्रथम तथा अग्रस्थान पोरवाडों को ही दिया जावेगा।

एवंच मान सन्मान में, राजकाज में शोर्य में, धेर्य में इन का बहुत उच्च स्थान था। अणहिलपुरपट्टण में राजा भीमदेव, कर्णदेव के समय तो इन लोगों की इतनी चलती थी कि इन्हीं के किये सब कार्य होते थे।

विमल चरित्र में एक जगह लिखा है कि, श्री अंबिका देवीने पोरवाडों को सात दुर्ग दिये अर्थात् उन्हें सात सद्गुणों के धारण कर्ता बनायेः—

सप्तदुर्ग प्रदानेन, गुण सप्तक रोपणात्।
पुट सप्तक वंतोऽमि प्राग्वाट इति विश्रुताः॥ ६५॥
आद्यं प्रतिज्ञा निर्वाहि, द्वितियं प्रकृति स्थिराः।
त्रितियं प्रोढ वचनं, चतुःप्रज्ञा प्रकर्षवान्॥ ६९॥
पंचमंच प्रपंचज्ञः, शष्ठं प्रबल मानसम्।
सप्तमं प्रभुताकांक्षी, प्राग्वाटे पुट सप्तकम्॥ ६७॥

(१) प्रतिज्ञा निर्वाह (२) स्थिर प्रकृति (३) प्रौढ वचनी (४) बुद्धिमान (५) प्रपंच के ज्ञाता (६) मन के दृढ (७) महत्वाकांक्षी।

परंतु थोडा ही समय व्यतीत होने के पश्चात पोरवाडों में भद होने लगा। प्रथम इनमें तीन भेद हुए। [१] पोरवाड [२] सोरठ (सौराष्ट्र) में गये वह सोरठिया पोरवाड कहाये,

और [३] कंडोल महास्थान में जाकर रहे वे कपोलों प्राग्वाट महाजन कहलाये। कपोलों के गोर कुंडल महास्थान के नाम पर से कंडोलिया ब्राह्मण कहलाने लगे यथाः—

"ततोराज प्रासादात् समीपपुर निवासतो वणिजः प्राग्वाट नामानो बभूवः। आदौ शुद्ध प्राग्वाटाः द्वितिया सुराष्ट्रंगता केचित सौराष्ट्र प्राग्वाटाः। तदवशिष्ठाः कुंडल महास्थान निवासीतोपि कुंडल प्राग्वाटा बभूवः तेषां धर्मोपदेष्टारो ब्रह्मद्वीप शिखायां महा ब्रम्ह ब्रह्मावटंक धारिणो ब्राह्मणा गुरवोजाताः।

इन भेदों के अतिरिक्त पोरवाडो में और भी दो भेद हुए। (१) जांगडा [जांगल देश वासी] पोरवाड और [२] पद्मावती [पद्मावती में बसे हुए] पोरवाड।

श्रीयुत् ओझाजी के कथनानुसार (नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग २ संवत् १९७८) वर्तमान सारा बीकानेर राज्य तथा मारवाड (जोधपुर राज्य) का उत्तरी हिस्सा जिसमें नागोर आदि परगने हैं प्राचीनकाल में "जांगल देश" कहलाता था। महाभारत में कहीं देश वा वहां के निवासियों का सूचक 'जांगल' नाम अकेला (जांगल) मिलता है तो कहीं कुरु और मद्रास के साथ जुडा हुआ [कुरुजांगला, माद्रिय जांगला] मिलता है। बीकानेर के महाराजा जांगल देश के स्वामी होने के कारण अपने को

जंगलधर (जंगल देश के बादशाह कहाते हैं) जैसे उनके राजचिन्ह में लिखा रहता है ।

जांगल देश की राजधानी अहिछत्रपुर थी जिसको इस समय नागोर कहते हैं और जो जोधपुर के उत्तरी विभाग में है ।

श्रीमाल (भिन्नमाल) से जांगल देश बहुत समीप है । अतएव वहां से चलकर लोगों का जांगल देश में जाना बहुत संभवनीय है । [सं० ११७५–७६] ।

पद्मावती के संबंध में अभी विद्वानों का मतभेद है । परंतु भवभूति के वर्णानुसार सब बातें सिंध पार्वति नदियों के संगम पर बसे हुए ग्वालियर राज्यांतगर्त "महुवा" स्थान पर दिखाई देती है । संभवनीय है कि यहीं पर प्राचीन पद्मावती नगर बसा हो । कप्पसूरि विरचित पट्टावली में (वि. सं. १४०२ की) लिखा है कि एक समय पद्मसेन राजा ने इस नमरी में बहुत बडा यज्ञ करना चाहा । उसके वास्ते असंख्य पशुओं को बलिदान देने के वास्ते एकत्रित किये । यह समाचार जब स्वयंप्रभ सूरि को मिला तो वे स्वयं वहां गये । उस समय वहां ८४ महाजन ज्ञातियां इकट्ठी हुई थी । उनमें प्राग्वाट भी थे । इन सबको प्रतिबोध देकर सुरीश्वर ने यज्ञ से विमुख किये । और जैन बनाये ।

पंडित ज्वालाप्रसादजी मिश्र लिखित "जाति भास्कर" में लिखा हैं कि:—" गोडवाड देश में पद्मावती थी; " परंतु इस सम्बन्ध में कोई विश्वसनीय प्रमाण अभी उपलब्ध नहीं हुआ है।

इस समय यदि देखा जावे तो एटा आदि गांवों में पद्मावती पोरवाडों की बस्ती अधिक संख्या में पायी जाती है। ये गांव महुवा से अधिक दूरी पर नहीं था।

पद्मावती पोरवाडों के उत्पत्ति की एक और भी दंतकथा प्रचलित है। और वह वस्तुपाल तेजपाल से उपस्थित "दसा" के भेद से भी अधिक गहणीय है। कोई धनाढ्य पोरवाड का दुर्भाग्य वश धन नाश होने के पश्चात किसी नीच कुलोत्पन्ना कन्याकों भाग्यवती देखकर उस श्रीमान ने उस कन्या से संबंध किया। उस स्त्री के भाग्य से उसका गत वैभव उसे पूनश्च प्राप्त हुआ। इनकी संतान तथा इन के पोरवाड साथी उस स्त्री के "पद्मावती" नामके कारण "पद्मावती पोरवाड" कहाये। इन लोगों के विवाह के समय रापी (चमारों का ओजार) का उपयोग करते हैं, यह इसी बात का प्रमाण माना जाता है। इस व्यंग पूर्ण कथा में द्वेष के अतिरिक सत्यताका प्रमाण प्रतीत नहीं होता। एटा के उक्त ज्ञातीय वकील सो से पत्र व्यवहार किया था परंतु उत्तर न मिला। विमल चरित्र में इन ज्ञाति भेदों का अत्युत्तम निर्णय किया है, और वह यथार्थ प्रतीत होता है।

" येषु स्थानेषु ये येषु वासिनं वणिजाः स्थिताः।
तेषां तद्वटंकेन ज्ञाति ख्यातेव भूतले. " ॥

अर्थात् जो वणिक लोग जिस स्थान में जा वसे वे उसी स्थान की अटक से पहचाने गये।

पोरवाडों की वस्ती गुजरात, मारवाड, मालवा, आबूका निकट वर्ती प्रदेश और भारत के अन्य प्रांतों में है। इन में से सौराष्ट्रीय तथा कपोल पोरवाड वैष्णव हैं। जांगला मुख्यतः जैन है। पद्मावती और शुद्ध पोरवाडों में जैन वैष्णव दोनों धर्म के पालनेवाले हैं। सवाई माधवपुर के तरफ भी पोरवाड हैं और वे अपने को अट्ठावीसे बताते हैं; और अपनी उत्पत्ति दसा वीसा भेद की उत्पत्ति के समय से रेखांकित करते हैं।

यहां तक तो प्रांत विभाग, निवास स्थान भिन्नता आदि कारणों से प्राग्वाटों में—पोरवाडों में भेद होना पाया गया परंतु गुजरात के सेनापति वस्तुपाल तेजपाल के समय में एक नया वादग्रस्त प्रश्न उपस्थित हुआ और उसी कारण केवल पोरवाडों में ही नहीं किन्तु गुजरात मारवाड निवासी महाजनों की ८४ ❀ ही ज्ञातियों में दसा वीसा का भेद

❀ चौरासी महाजन ज्ञातियों की नामावलीः—

(प्रतिपन्नपाली) श्रीमाली (-प्रकट पताप) पोरुआड (अरडक्क मल्ल) ओसवाल। (भला दीसई) डसिावाल। डीडु। हरसुरा, वघेरवाल भाभूखंडा, मेडतवाल दाहिण, सुराणा, खंडेरवाल, कथरोटिआ, कोरटावाल

उत्पन्न हुआ जो कि आज भिन्न भिन्न ज्ञातियों के रुप में दिखाई देता है।

दसा बीसा भेद की उत्पत्ति।

गुजरात मारवाड की सभी ज्ञातियों में ऐसा संख्या वाचक एक सरीखा भेद क्यों हुआ और कब हुआ ? ऐसे जिज्ञासु प्रश्न उपस्थित होते हैं। ऐतिहासिक प्रश्नों का विवरण तर्क वितर्क के बदले प्रमाण सिद्ध होने की आवश्यकता होती है; अतएव इस बात का खुलासा जिन प्रमाणों से हो सकता है उन का अनुशीलन हमने करना चाहिये।

बोधसोन, जाइल्लवाल. नागर, नाणावाल, खडायता, पल्लीवाल, जालहरा, वाहडा, चित्रवाल, छांया, कपोल पुष्करवाल, जंबूसरा, नागद्रहा, सुहडवाल, मुढेरा, करहिया, उप्रबाल, बांभण, आच्चित्तवाल, श्रीगुड, गूजर, श्रीमाल प्रौढ, अडालिजा, मांडलिया. गांभुआ मोढ, लाडुआ श्रीमाली, लाड, जांगडा, सोरठिया पोरवाड, नय सरुस्तकी, नरसिंघपुरा, हालर, पचम काथउरा, वाल्मीक, कंवोतिसुरा, तेलुउटा, अष्ठवग्री। वघणुरा, सिरिखंडेरा मेवाडा भोडिआडा, काटजिणडा, जेहराणा, सोहरिया, धाकडामुहवच्या, भाडिया, भूंगाडिया, हूंवड, नीमा, मडाहडा, ब्रह्माणा, वागड्ड, चित्रउडा, विधु माथर, नाउरा, पद्मावती, काकली, आणंदुरा, मांडेरा, साचुरा गोलावाल राजउरा, लाडीसखा, द्वीसखा, चऊसखा,—कोई जैन विद्वाननें 'महमदपादसाह' इस लेख में वि. सं. १५०० पहिले लिखा है।

[श्रीमालीओना ज्ञाति भेद पृष्ट २३३-३४]

प्रथम तो दसा और बीसा ये संख्या वाचक शब्द होते हुए ज्ञातियों को लगने से उसका क्या अर्थ होता है और वे किस बात के सूचक हैं, इसका ठीक ठीक खुलासा होने की आवश्यकता है। इस बात का खुलासा करनेवाला एक लेख सूरत जिला के चिखली तालुका में चिखली से लगभग दो कोसपर मजिगांव की सिमा में " मल्लिकार्जुन " महादेव के मंदिर में मिला है। इस लेख में " दशा-वीसा " के अर्थ का स्पष्ट खुलासा किया गया है। यह मंदिर संवत १६७९ में सूरत के डीडू नामक महाजन का बनवाया हुआ है। उस में लिखा है कि:—

मल्लिकार्जुन के मंदिर का शिलालेख।

श्रीगणेशायनमः ॥ संवत १६७९ वरषे शाके १५४५ प्रवर्तमाने·····मते श्रीसूर्ये ग्रीषम र (ऋ) तै महामंगल प्रद वैशाख मासे शुक्ल पक्षे १२ गुरुवासरे····· सी नक्षत्रे सिधी जो [यो] गे तद्द प्रारंभ प्रासाद मूर्त पादस्त श्री जांगीर साहा विजय राज्ये प्रगणे चिखली देसाई नामक प्रागजी भ्राता सूरजी प्रासाद कर्ता सूरत बंदरे वास्तव्य तपसी रघुनाथ-भट गरिनार आशिर्वाद पारेख माधवसुत परिख रामा सूत परिख राजपाल, सूत परीख कीका सूत परीख नाथजी भार्या बाई बबाई पिता परीख सहस्र कीर्ण शीरंगनी दीकरी तेना सूत २ परीख कहान नी भार्या मानबाई सीहा भाई आनी दीकरी

तेनि सूत ४ तापीदास " तलसीदास, गोवंददास, गोकलदास विनि " १ बाई लाडकी, बीजु भाई परीख नाननी भार्या गुर-बाई तेनु पिता वीरजी कहाननी दीकरी तेनी सूत मोहनदास ग्नाति श्री डीडू साजनि **वसा २०** गोत्र देव्या लेखासर वास व सूत्र " कार्य कर्ता सार्थी साहादेवजी वाघजी कासी आ सूत्रधार भीखा गला पीतु देवजी सीरंग गोबंद त्रय पेढी ग्राती सोमपरा शाखा इंदु शल्य भी गोत्र देव्या त्रीपुर सुंदरी विश्वकर्मा कुले प्रासाद कर्ता सं. १६८६ वर्षे शाके १५५१ प्रवर्तमाने मार्गशीर्ष मासे कृष्ण पक्षे १३ बुधवासरे विसाखा नक्षत्रे तदिने कार्य संपूर्ण शिव मलका अर्युननी कीपाथी कार्यदापादआ "

[श्रीमालिओना ज्ञाति भेद से]

इस लेख में डीडू साजनी वसा २० ऐसा लिखा है। "वीसा डीडू" लिखने के बदले "वसा २०" लिखा है अर्थात् वीसा और "वसावीस" ये दोनों एक ही अर्थके बोधक होना चाहिये। वीस वसा का हिंदी अर्थ बीस विसवा है।

॥ वीस वसायल वांणियो जुओ ते नाम कहाई !
आचारज स्थापन करी गच्छ चोरासी मांहि ॥ ५२ ॥
(पे. रासमाला)

वणिक गुण वर्णन करते समय शामलभट कहते हैं कि—

वीश वसा नहि वणिक, जीभे जे जूठूं बोले,
,, ,, ,, ,, पेट नो पडदो खोले,

वीस वशा नाहे वणिक, उतावलियों जे थाए,
" " " " वनिता शूं वहे वाये,
वळी वीशवसा ते वणिक नहीं बड्यो रावले जाणियो !
जे सत्य तजे शामल कहे, वीश वशा नहीं वाणियो ॥

जैन साधुओं को "वीस विश्वा जीव दया प्रति पालक" लिखा जाता है। अर्थात उत्तम कुलवान, संपूर्ण योग्यता वाला वह वीस विसवा और कम योग्यता वाला कम विसवा का कहा जाता है। बहुत पुरातन काल से लेखों में वीस विसवा का प्रयोग मिलता है।

राजा जयचंद्र के यज्ञ में निमंत्रण किये हुए कान्यकुब्ज ब्राह्मणों को उनकी योग्यतानुसार एक विसवा से वीस विसवा तक उन को स्थान दिया गया था।

जब मनुष्यों में वा कोई वस्तुओं में उन के गुणानुसार तुलनात्मक विचार किया जाता है तब कहा जाता है कि "वह मनुष्य वा वस्तु उस से वीस विसवा वा बीसी है या उन्नीस विसवा या उन्नीसी है।"

महाजनो में भी दशा वीसा का भेद इसी अर्थानुसार माना गया होना चाहिये। 'वीसा' सर्वोत्तम 'दशा' निम्न श्रेणि का दर्शक होना उक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है। अब उसका भेदा भेद क्यों हुआ यह बताने के पहिले उस के समय का निर्णय करने की आवश्यकता है।

यह समय निर्णय करने के वास्ते जैन श्रावकों ने हमारे वास्ते बहुत कुछ साधन उपलब्ध कर रक्खे हैं। जैन मंदिरों में पाषाण तथा धातु प्रणित मूर्तियों पर प्रतिष्ठा करनेवाले का नाम, उस की दो तीन पीढीयों के पूर्वजों के नाम, उन की ज्ञाति का नाम, जहां प्रतिष्ठा की हो वहां का नाम, उन के निवास स्थान का नाम तथा संवत मिति आदि कुरा हुआ मिलता है। इस के अतिरिक्त प्रतिष्ठा करनेवाले धर्म गुरु उन का गच्छ आदि का गाम दिया हुआ होता है। महाजनों के इतिहास लेखक को यह बहुत अच्छा साधन है। दसा वीसा के भेद होने के समय निर्णय को यही एक मात्र उपयोगी तथा विश्वसनीय साधन उपलब्ध है। इन लेखों में ज्ञाति के उल्लेख की जगह कहीं दसा वीसा और कहीं वृद्ध लघु शाखा ऐसा लिखा हुआ है। इन लेखों को देखने से मालुम होता है कि, अर्वाचीन एक दो शताब्दियों के प्रायः सभी लेखों में दसा, वीसा, वा वृद्ध, लघु, शाखा का उल्लेख है परंतु इस के पहिले के सभी प्राचिन लेखों में इस भेद का उल्लेख नहीं मिलता। इस वास्ते अर्वाचीन लेखों को छोड प्राचीन लेखों का ही विचार आगे किया है; किन्तु पाठकों के वाचनार्थ नमुने के कुछ लेख आगे दिये गये हैं।

१

लघुशाखा–प्राग्वाट [पोरवाड]

नवघरे का मन्दिर–धातु मूर्तिपर।

सं० १४३३ आषाढ शु०...प्रा. लघु० व्य० आसा भा० ललत दे...श्रीपार्श्वनाथ बिं० का० श्रीगुणभद्र सूरिणा-मुपदेशेन....." (श्री पू० नाहर के लेख संग्रहमे)

२

वृद्धशाखा–श्रीमाल ज्ञाति।

भडोंच के श्रीपार्श्वनाथजी के मन्दिर में–धातु मूर्तिपर।

स्तस्ति श्री सं० १५१० वर्षे फागुण वदि ३ शुक्रे वृद्ध शाखीय श्रीमाल ज्ञाति मं. चांपा भार्या वा० झमकु तथा पुत्र गोधाकेन भा. वा. कुतिगदे पुत्र सीहा प्रमुख सकुटुंब श्रेयोर्थं श्रीपार्श्वनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं वृहत्तपापक्षे भ. श्री विजय तिलक सूरिपटे भ. श्री विजयधर्म सूरिबरेन्द्र।

[श्री मणिलालजी के 'श्रीमाळी ओना ज्ञातिभेद' से]

३

लघु संतान–श्री श्रीमाल।

सूरत तालावाला की पोळ में मंदिर स्वामी के देरासर में पीतल की प्रतिमापर का लेख।

सं. १५११ वर्षे माघ वदि ५ शुक्रे श्री श्रीमाल वंशे लघु संताने व. महुणा भा. माणिकदे पु० जगा भार्या गंगी

सु. श्राविक या श्री अंचल गच्छ नायक श्रीजयकेसरी सूरिणा-मुपदेशेन स्वश्रेय से श्री कुंथुनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री संघेन. ॥ श्री. ॥

['श्रीमाळीओना ज्ञाति भेद' से]

४

वृद्धशाखा—प्राग्वाट ।

तीर्थ श्री चम्पापुर—धातु मूर्तिपर ।

सं. १५८१ वर्षे माघ वदि १० शुक्रे श्री प्राग्वाट ज्ञाति वृन्नशाखायां व्य. सहिमा सु. व्य. समधर भा. बडधू सु. व्य. हेमा भार्या हिमाई सुत व्य. तेजा जीवा वर्धमान एते प्रतिष्ठापितं श्री निगम प्रभावक आणंद सागर सूरिभिः ॥ श्री शांतिनाथ बिंबं श्रीरस्तु श्रीपत्तन नगरे ॥

[श्री. पू. नाहर के 'जैन लेख संग्रह' से]

५

वृद्धशाखा—प्राग्वाट् ।

उदयपूर-मेवाड-श्रीशीतलनाथजी का मंदिर पंचतीर्थी पर सं. १५९७ वर्षे पोस वदि ५ सकरे सहूआला वास्तव्य प्राग्वाट वृद्ध शाखायां दो० वीरा भा० भाणा भा० भरमादे तेनसा श्रेयसे श्रीआदिनाथ बिंबं का० प्र० श्रीजिनसाधुसूरिभि ।

[श्री पूं० नाहर के जैन ले० संग्रह से]

६

लघुशाखा--प्राग्वाट ।

आग्रा--वोहरन टोला में ।

सं. १७१० व. जे. सु. ६ मिति प्राग्वाट लघुशाखायां श्री व्य. मं. मनजी केन सुपार्श्व बिंवं कारितं । प्रतिष्ठितं तपा विजयराज सूरिभिः ।

७

वृद्धशाखा--प्राग्वाट ।

जेसलमीर-सेठ थीरु साहजी का देरासर-पंचतीर्थ सं. १५७९ वर्षे वैशाख सुदि १२ रवौ वृद्ध प्राग्वाट ज्ञातीय श्रे. सिवा भा. धर्मिणी सु. श्रे. हांसा भा हासल दे सुत मूला युतेन स्वश्रेय से श्री आदिनाथ चतुर्विंशति का कारिता । प्रतिष्ठिता साधु पूर्णिमा पक्षे भट्टारक श्री उदयचंद्र सूरि तत्पट्टे भट्टारक श्री मुनिचंद्र सूरिभिर्विधिना ॥ श्रीचंपक नगर वास्तव्य ॥ कल्याणंच ॥

८

वृद्धसज्जनीय—ओसवाल ।

कुंभारिया के मंदिर की प्रतिमा पर का लेख ।

सं० १६७५ वर्षे माघ शुद्ध चतुर्थ्यां--शनौ--श्री उपकेश ज्ञातीय वृद्ध सज्जनीय तपागच्छे भट्टारक + + ×"

(तीर्थ गाइड).

आचार्य श्री बुद्धिसागरजी सूरिकृत धातुप्रतिमा लेख संग्रह में सं० १४९५ के एक लेख में "उकेशवंशे साहुशाखायां" ऐसे शब्द हैं। साहू का अर्थ सज्जन है। वृद्ध शाखावाले अपने गौरव के वास्ते अपनी तड़ को यह शब्द लगाते होना चाहिये। इसी संग्रह में आगे ऐसे ही दो लेख मिलते हैं। श्रीयुत नाहर साहब के लेख-संग्रह में एक लेख साधुशाखा नाम का है। अर्थात् इस शब्द की योजना बीसा अथवा वृद्धशाखा के बदले में की जाना संभवनीय है। इस संग्रह में,

संवत ९०० से १५०० तक के ४१५ लेख में ल. शा. का १ सं. १५०० का लेख है। अन्य कोई लेख नहीं। संवत १५०० के पीछे के लेखों में यह भेदाभेद देखने में आता है। सं. १५१५ के एक लेख में "सिद्ध संताने" लिखा है। सं. १५१७ में "लघुसंतानीय दोसी महिराज" ऐसा लिखा है। सं. १५७५ के लेख में "श्रीमाल ज्ञा. लघुसंतानीय" तथा सं. १५१९ के लेख में "लघुशाखायां" ऐसा लिखा है। पाठकों के अवलोकनार्थ श्री. पूर्णचंद्रजी नाहर के संपूर्ण लेख-संग्रह का दसावीसा के संबंध का दोहन करके निम्न टेबल में बताया है।

शताब्दि.	श्रीमाली.		पोरवाड.		ओसवाल.	
	वृद्ध.	लघु.	वृद्ध.	लघु.	वृद्ध	लघु.
१६वीं शताब्दि.	१	२	१२	३	९	७
१७ ,, ,,	८	०	९ लेखोंमें उल्लेख		९ लेखोंमें उल्लेख	
१८ ,, ,,	४	१	३-	०	३	१
१९ ,, ,,	कुल २८ लेखों में से १३ वृद्ध-शाखा के और एक लघु-शाखा का है ।					

उक्त खुलासे से प्रकट होता है कि वृद्ध-शाखा भिन्न२ नाम से पहिचानी गई है। ज्ञाति-समूह को साजनू कहने की प्रथा तो लगभग भी प्रचलित है। अर्थात् "वृद्धसाजन लघुसाजन" का अर्थ समझना कठिण नहीं। परंतु वृद्ध लघु संतानीय "शब्द गच्छों की शिष्य संप्रदाई प्रथा का द्योतक सा मालुम होता है परंतु है उसका संबंध "दसा बीसा" इन्ही शब्दों से। "बृहत शाखा लघु शाखा" ये शब्द बडी छोटी शाखा को बताते हैं। "साधु [साहु] शाखा-वृद्ध शाखा ये शब्द वृद्ध शाखा वालों ने अपने ही गौरव के लिये लगाये होना चाहिये। एवं 'वृद्ध' जगह जितने भीं शब्दों का प्रयोग हुआ है वह सब श्रेष्टता सूचक है। अतएव दसा बीसा का भेद इन ज्ञातियों में होने का कारण भी कोई श्रेष्ठ कनिष्ठता का उत्पादक होना चाहिये।

उक्त अनुशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि वृद्ध शाखा के लेख अधिक और लघु शाखा के कम हैं उसका कारण भी

यही है कि वृद्ध शाखा श्रेष्ठता सूचक होने से उसका उपयोग लोक अधिक करते हों तथा लघु शाखा शब्द लघुता का दर्शक होने के कारण उसका उपयोग करने में लोक अनमान करते हों।

सूरिजी के लेख संग्रह से तथा अन्योन्य स्थलों के लेखों से पाया जाता हैं कि, लाड, कपोल, मोढ नागर, वाघेला, नेमा, खंडायता, डिसावल, आदि गुजरात की सभी महाजन ज्ञातियों में प्राचिन काल से दसा बीसा का भेद है।

इस प्रकार श्रीयुक्त बाबू पूर्णचंद्रजी नाहर के जैन लेख संग्रह के तीनों खंड देखने से मालुम होता है कि, उन में उल्लिखित सतरह अठराह ज्ञातियों में से केवल श्रीमाल, पोरवाड तथा ओसवाल इन्हीं गुजरात वासियों में दसा बीसा का भेद है; परंतु अग्रवाल, पल्लीवाल आदि गुजरात के बाहर की ज्ञातियों में इस भेद का उल्लेख नहीं है। अर्थात इस भेदा भेद का कारण गुजरात में ही उपस्थित हुआ होना चाहिये और वह भी संवत् १४०० पश्चात; क्यों कि सं. १४४३ के पहिले के किसी लेख में ऐसा उल्लेख अभी तक नहीं मिला है। विक्रम की आठवीं शताब्दी तक महाजन ज्ञातिसे संबंध रखने वाले लेख मिलते हैं अतः इस समय तक का महाजन ज्ञाति का स्वरुप समझने के विश्वास पात्र साधन उपलब्ध हैं। इन सं. ८०० से सं. १४३३ तक के किसी लेख में दसा वीसा या वृद्ध लघुशाखा का उल्लेख नहीं है

यदि यह भेद सं. १४३६ के पूर्व का होता तो इस संबंध का उल्लेख न्यूनाधिक्यता से इस के पूर्व के लेखों में अवश्य मिलता। इन सब बातों से यही निष्कर्ष निकता है कि, संवत् १४३३ के पहिले ही कोई एसा महत्व का कारण हुआ होना चाहिये और उसका उत्तरदायित्वभी ऐसी महत्व पूर्ण व्यक्ति के तरफ होना चाहिये कि जिस के कारण महाजनों की चौरासीही ज्ञातियों में यह भेद विप्लव हुआ।

अब हमें देखना है कि इस भेद का स्वरुप क्या है। यह भेद स्वतंत्र ज्ञाति तो नहीं है ? यदि यह स्वतंत्र ज्ञाति होती तो जैसी श्रीमाली ज्ञाति में से निकली अन्य ज्ञातियों के नाम हैं वैसे ही इन के होते और मूल ज्ञातियों के नामसे दसा वीसा संलग्न न रहते; परंतु ऐसा नहीं है। जिन जिन ज्ञातियों में यह भेद हुआ है, उन उन सभी ज्ञातियों के मूल नाम दसा वीसा के साथ जुडे हुए हैं। यथाः—

"दशा श्रीमाली, वीसा ओसवाल. दसा लाड, वीसा पोरवाड"

इस पर से यह स्पष्ट है कि " दसा वीसा " कोई स्वतंत्र ज्ञाति नहीं है; किन्तु भिन्न भिन्न ज्ञातियों में हुई मत भिन्नता के कारण पडे हुए भेद उर्फ (तड) हैं। अब हम इस निर्णय तक पहुंच चुके हैं कि सं. १४३३ के पहिले गुजरात की महाजन ज्ञातियों में ही कोई महत्व के कारण से यह भेद तट (तड) उपस्थित हुए हैं, जो कि आज तक उस मत

भिन्नता का निपटेरा न होने से प्रचलित रहे हैं। सांप तो निकल गया किन्तु घंसीटन अब भी कायम है। यह तड कब और क्यों हुई इस संबंध के कोई प्रमाण उपलब्ध हों तो अब देखना चाहिये।

श्री जैन श्वेतांबर कॉन्फरन्स हेरल्ड के सन १९१५ के खास अंक में "जैन असोसियेशन ऑफ इन्डिया" की ओर से मिली हुई प्राचीन प्रति अनुसार "तपगच्छ पट्टावली" प्रसिद्ध की गई है उस में वस्तुपाल तेजपाल और दसा वीसा के संबंध की निम्नोक्त हकीकत दी है।

"वस्तुपाल तेजपालनो संबंध"

"गुजरात देशमां धुलका [धोलका] नगरमां उवरड गोत्रमां प्राग्वाट ज्ञातिमां शाः आसराज रेहेता हता। ते पाटणमां वस्त्र व्यापार अर्थे आव्या। त्यां हाट मांडो रह्यो। मालसुद गांमभां व्यापार करे छे। एकदां पंचासरा पासनी यात्रा करि धर्म शालामां चित्रवाल गच्छनां श्रीभुवनचंद्र सूरिने वांदी बेठो। एवामां त्यां श्रीमाली ज्ञातिनो वणहर गोत्रनो शा आंबो तेनी स्त्री लक्ष्मी अने तेनी पुत्री बाल विधवा कुंवर नामनी ते श्री गुरुने वांदे छे। एटलामां गुरुने वांदता थकां श्री सूरिए वालकुक्षीए तलव्रण देखी मस्तक धुणाव्यूं त्यारे पासे बेठेला शिष्ये कहयुं "श्री गुरु! आनुं कारण शुं?" गुरुए कहयुं,

आवी कुक्षीमां युग्म पुत्र वस्तुपाल तेजपाल नामें घणा पुन्य करणीना कारक थशे अने तेना नाम आचंद्रार्क रहेशे । "ते गुरु कथन ना वचन शा. आसराजे सांभल्या। केटलाक दिवसे पूर्व कर्म संचयना योगथी ते बन्नेनो संग थयो, एटले त्यांथी ते बंने पलायन थया । मांडलिक [मांडल] नगरे जई रह्या । अनुक्रमे विक्रम सं. १२६० वर्ष वस्तुपालनो जन्म थयो। पुनः एकसो अने पचास पानन ने [?] अंतरे तेजपालनो जन्म थयो । ते आसराजे पहेला गुरुए जे नाम कहयां हता तेज नाम आप्या । एवामां मालव देशमां नलवर नगरमां शालि नामे कुंमर प्रकट थयो । तेने मनुष्य ढोलो नाम कहे छे । वीरधवलना राज्यमां पुनः विक्रम सं. १२४१ मां लाखो फलाणी थयो । एटले वस्तुपाल तेजपाल मांडिल नगरमां वर्ष पांचना थया । त्यारे त्यां मनुष्ये ज्ञात पूछी, एटले त्यांथी आसराज पश्चिम दिशाए थई देवकी पत्तने रह्यो। त्यां मनुष्योए बालकने मोटा तेजवंत जोई ठाम ठिकाणूं पूछयूं एटल त्यांथी घोडिआल गाममां पोताने देश आवी रह्या । त्यां वर्ष आठना बे बालक थया त्यारे घी कूपिकानो व्यापार कर्यो । एवामां त्यां भुवनचंद्र सूरी विहार करता आव्या । शा. आसराज ने कुंवर स्त्री ने ओलख्या । गुरुए बन्ने बालक पुन्यवंत जाण्या । त्यारे श्रीगुरुए विक्रम संवत १२६९ ना वर्षमां वस्तुपालने जिन शासनमां कीर्ति कारक उत्तम योग्य जाणी अंबिका अने कवड यक्ष वर दीधो । ❀ ❀ ❀ केटलेक दिवसे सा आसराज

त्यांथी कुंवरने लईने बन्ने बंधव साथे धवलक नगरमां आवी रह्या। त्यांथी गुरुए आपेल वरना महिमा थो दिने दिने व्यापार थी उदयवंत थया। एवामां विक्रम संवत १२७४ वर्षमां वस्तुपालने ललिता दे साथे पाणिग्रहण थयुं। एवामां माता कुंवरनो स्वर्गवास थयो। अग्यार दिवसने अंतरे पिताश्री आसराजनो स्वर्गवास थयो। आवीरीते १८ वर्ष व्यापारमां थया। तेज वर्षे अंबिका अने कवड यक्षनी कृपा थी राज श्री वीर धवले वस्तुपालने घणा आग्रहे मंत्रिपद आप्यू, तेटलामां त्यां भंडारी पद तथा मंत्रि पदना तिलक करवाना अवसरे मंत्रि वस्तुपाल ज्ञाति त्रीस पाटण पाखेल पोषतो हतो। एवामां पाटणमां नगर श्रेष्ठीने घेर भविष्यताना योगे नोतरुं विसर्युं-देवायुं नहि। अजाण पणे ते शेठनो पुत्र वर्ष १३ नो ते सामान्य पणुं-सामान्य स्थिति थवा थी घी तेल हलदर हींग वेची बपोरे [बे प्रहरे] घेर आव्यो। एटले पोतानी माताने रुदन करती दीठी। आ देखी पुत्रे कहयुं, " आ केम ? " त्यारे माताए कहयुं, " आपणा पाटण नगरना मुख्य श्रेष्ठी तारा पितानुं मरण तारा बालपणाथी थयुं छे। द्रव्य पण नहीं तेथी आपणे घेर नोतरुं [नुहुतरु] न आव्युं। अने ए राज मंत्रि भाग्यवंत थयो पण छिद्र सहित छे ❀❀❀ आम विचारी तेणी ए बधी बेटा आगळ आसराज प्राग्वाट्, कुंवर बाल विधवा ए श्रीमाली, मंत्रिने मोटो छिद्र ए छे। आ वात पुत्रने सघली कही। आ सांभली बेटाने हर्ष थयो। एटलामां ज्यां

समग्र साजनो भोजन करे छे मुख्य गृहस्थ हर्षमां बेठा वार्ता करे छे, त्यां तेणे आवी चोरासी साजनानी आज्ञा कही-मांगी बे हाथ जोडी माताए जे विपरित वात [पोतानी माने नाखरुं करवानी रजा आपवा] कही हती ते बधी वात सकल साजन ने करी, त्यारे तेने साजनाए कह्युं, रे तुं कोण घर ? आपत्तन मां मुख्य थईने आ केवी वात कही ? लाजतो नथी ? एटले तेणे मंत्रीनी उत्पत्ति सघली वृद्ध गृहस्थो पासे प्रकाशी। आसांभळी सकल लज्जावंत थया। चित्तमां सदेह पेठो। सकलसमाज ने तेनी वृद्ध माता ने पूछयूं तेणीए कहयुं मुख्य घरे नोतरूं नहीं अने तेने तमे द्रव्य खातर गया, पण तमे सकल साजनो जई बरुडी गाममां तेनी उत्पत्तिना कारक श्री भुवनचंद्र गुरु सप्त गोत्री आने पूछो। तेथी साजनाए बधूं गुरु ने पूछयूं त्यारे श्री गुरुए यथार्थ वात कही दीधी। एटले ते पाटणे आव्या मंत्री नी वात माहो माही कहेवातां नगरमां अने अन्य गाम मां विस्तरी। एटले त्यांथी **विक्रम संवत् १२७५ वर्ष मां मन्त्री वस्तुपाल अने तेज पाल थी प्राग्वाट लघुशाखा प्रगट थई।** एटले, स्वज्ञातिना परज्ञातिना दुर्बल ग्रहस्तने भोजन मां तेडी कवले कवले सुवर्ण महोर दई स्वज्ञाति वधारी नाम राख्यूं। सकल ज्ञाति लघुशाखा प्रगट थई। एटले श्री भुवनचंद्र सूरि विहार करता पाटण आव्या। महा महोत्सवे शालाए पधराव्या। त्यां चोमासुं रह्या। मंत्री वस्तुपाल गुरु वचन थी पंचाश्वर

मास प्रासादे वर्षमां चार प्रौढ रथ–यात्रा निपजावी । करी-चार वार प्रौढ साधर्मिक ने संतोष्या ❀ ❀ ❀ श्रीमंत मंत्रीए संघयात्राना दरेक मनुष्य ने पाटणमां सुवर्ण महोर दीधी ❀ ❀ ❀ ८ कोडी अने ९३ लाख टका यात्रा स्नान, प्रसाद । बिंब स्थापनाए श्री पुंडरिक गिरीए आत्म हेतुना कारण माटे छुटभी वापर्या । वली अठारह कोडी अने ८३ लाख टका श्री रेवता चले सुततिए–छुट थी कीधा–खर्चा पुनः बारह कोडी अने ५३ अधिक श्री अर्बुदा चले सुत्ततिए कीधा। एटले ओगणीस कोडी एंसी लाख हजार वीस हजार नवसे अने नवाणुंटका ते नव चोकडी एउणा एटलो द्रव्य मंत्री श्री वस्तुपाले प्रिहुं तेथी सुत्ततिए कींधा । पुनः कवित,

पांच अरब ने खरब कीध जेणि जिमण बारह,
सात अरब नि खरब दीध दूव्वल परिवारह,
द्रव्य पचासिय कोडि कीध भोजक वर भट्टां,
सत्ताणुए कोडी फल तंबोली हट्टां,
चंदन चीर कपूर मई कोडी बहुत्तरि कापडे,
पोरवाड़ वंश अवणे श्रुष्यो श्री वस्तुपाल महि मंडले ॥

वस्तुपाल तेजपाल का रास ।

संवत १७२१ में अनुवादक पंडित मेरुविजय, अपने रास में वस्तुपाल तेजपाल के ज्ञाति भोजन का विचार वर्णण इस तरह करते हैः—

भुपत पें भलूं साजनूं, नातसमो नहि कोय,
एम जाणी मंत्री वली, साजनुं मेले सोय,
नातचोराशि त्यां वसे, मंत्री दीये झाझां मान,
धवलक पुर रलियामणुं त्यांनात मिली अभिराम ॥४॥

इस के आगे कविने ८४ ज्ञाति के नाम बताये हैं। तत्पश्चात् पेहेरामणी देनेके समय धोलका की यशोधर पोरवाड की स्त्री अपना छोटा लड़का देवदत्त को साथ लेकर वहां उपस्थित हुई, और कहने लगी कि, मेरी युवा अवस्था है, मैरालड़का—छोटा है, मै पुनर्विवाह करना चाहाती हूं. अतः पंच मुझे ऐसा करने की परवानगी देवें। यह सुनतेही पंचों में संन्नाटा छाया, तब कवी कहता है:—

नारी वचन ते सांभळीरे; साजन दहुं दिशे जाय,
वारू वांणियोरे,
प्रधान पासे जेता रह्यारे, ते लघुशाखा कहिवाय,
नान्हो बालुडोरे.
पागे लागी मंत्री वीनवेरे, साजनासूं जार न थाय,
वारू वाणियोरे,
लाजे पड्या केता वांणियारे, प्रधाननी बांह साय,
नान्हो वालुडोरे,
लघु शाखा तिहां थापतां रे, निज निज न्यात कहिवायके,
वारू वांणियोरे,
शाखा प्रशाखा प्रस्तरीरे, बीजो नहीं किसो अन्यायरे,
नान्हो वालुडोरे
यशोमती न्यात अजू चालतीरे, राख्यो न्यातनो बंध के,
बारू बांणियोरे,
वृद्ध शाखी ते जाणियेंरे, लघु वस्तुपालथी संघ के,
नान्हो वालुडोरे,

अंत में कवि लिखता है कि:—

"श्रावक जन सहु आगरे म्हें, चरित्र रच्यो रसालोरे,
लघु प्रबंध वस्तुपाल तणो, जोई रास रच्यो सुविशालरे.

इससे ज्ञात होता है कि, यह रास लोकाग्रह से सत्य-पूर्ण रचा गया है।

सं. १५७८ में सौभाग्य नंदिसूरिकृत विमल-चरित्र में लिखा है कि:—

प्राग्वाटाद्या विंशति वींशोपका ज्ञातयो भवंत्यस्मात्।
दशते स्त्री संग्रहे मद्यादिनी वृत्तितो दशवै ॥ ६१ ॥
उभयगुणा रोपण तो विंशोपका विंशति स्फार तेषां।
एकतरा रोपणात्तस्मादर्ध मेषामनाचरे ॥ ६२ ॥
× × × × ×
व्यवस्था मिति ये मर्त्या लापयंति अतः परं।
क्षेप्यास्त लघुशाखायां वृद्ध शाखीय पंक्तितः ॥ ६५ ॥

अर्थः—इसमें से पोरवाड आदि ज्ञातियों में वीसा ज्ञातियां हुई। जिन्होंने परस्त्री ग्रहण की वे दसा तथा मद्य आदिक हलका धन्दा करने वाले भी दसा कहाये। मातापिता के दोनों पक्ष जिसके पूर्ण हों वह वीसा अथवा जो उत्तम कुलशील का हो वह वीस बिसवा और एकही गुणका हो वह अर्ध एवं दसा कहाया ❋ ❋ ❋

इसके पश्चात् जो मनुष्य इस व्यवस्था का भंग करे वह वृद्ध-शाखा में से लघुशाखा में डाल दिया जावे।

"प्रबंध चिंतामणि" ग्रंथ में वस्तुपाल तेजपाल को ही इस भेद के उत्पादक बताये हैं। यथा—

" मन्त्रिणस्तु जन्मवार्ता चैव। कदाचिच्छ्रीमत्पत्तने भट्टारक श्री हरिभद्र सूरिभिर्व्याख्यानावसरे कुमार देव्य भिधाना काचिद्विधवातीवः रूपवती मुहुर्मुहु निरीक्ष्यमाणा स्थित स्याशराज मन्त्रिणश्चित्तमाचकर्ष। तद्विसर्जना नंतरं मन्त्रिणा-नुयुक्ता गुरव इष्ट देवता देशादमुष्याः कुक्षौ सूर्यचंद्रमसौभा-विनमवतारं पश्यामः तत्सामुद्रिका निभूयो विलोकितवंत इति प्रभोर्विज्ञात तत्त्वः सतामपहृत्य निजां प्रयेसीं कृतवान्। क्रमा-त्तस्या उदरेऽवतीर्णौ तावेव जोतिष्केन्द्रा विव वस्तुपाल तेजः पालाभिधानौ सचिवावभूतां।

जैन "धातु प्रतिमा लेख संग्रह" में आचार्य श्री बुद्धि सागर सूरि लिखते हैं कि:—

" वस्तुपाल तेजपाले पट्टणमां ८४ जातना वणिको ने जमवाने माटे नोतर्या हता। तत्समये पाटणमां नगर शेठनी पदवी वीशा श्रीमाली ने धेर हती। ते वखते नगर शेठनो पुत्र नानो हतो। तेथी तेने ८४ जातना जैन वाणिया भेगा थया ते अवसरे बोलाववामां आव्यो न होतो। तेथी तेनी माताए पुत्रने उश्केर्यो अने कह्युं के वस्तुपाल तेजपालनीं माताए पुनर्लग्न कर्या छे ने तेना वस्तुपाल तेजपाल वे पुत्रो छे। जातना वाणिया ओए वातनी तपास करी। ते बात साची ठरी तेथी जमणमां भंगाण पडवा मांडयू। जे पोरवाड पक्षनां

वस्तुपालना पक्षमां रही जमणमां भाग लीधो ते सर्व वणिको दशा श्रीमाली, दशा ओसवाल; दशा पोरवाड तरीके प्रसिद्ध थया अने जेओए जमवामां भाग लीधो नहीं तेओ वीशा श्रीमाली वगैरे तरीके प्रसिद्ध थया।"

जैन कान्फरन्स हेरल्ड में श्री अमरचंदजी पी परमार ने लिखा है कि:—

"पाटण गुजरातमां वस्तुपाल तेजपाल नामना बे नांमांकित जैन भाइयो हता, ते ओए·····सं. १२७५ नी आस पासमां आबू उपर आरसना भव्य मंदिर, अनेक दानशालाओ, वावो, धर्मशालाओ वगैरे बंधाव्यां हतां तेओए आबू उपर सं. १२७५ ना वर्षमां एक भव्य जमण जैनों ने आप्यूं हतो। तेमां जमवा जवानी बाबतमां अमुक कारणेसर वांधो पड्यो हतो। केटलाएक लोको तेओना पक्षमां रहीने जमवा गया हता अने बीजा नहीं गया हता। जेओ जमवा न होता गया तेओ पोताने वीस विश्वाना गणी जमवा जनाराओने दसा (हलका) कहीने बोलाववा लाग्या; अने पोताने वीसा कही ओलखाव्या। ए जैनो मोटी संख्यामा आबू उपर प्रतिष्ठा करवा गएला होवाथी तेमां घणी जातीओ हती। तेथीज त्यां गएला ओसवाल, श्रीमाली, पोरवाड हूवड, नीमा वगैरेमां वीसा ओसवाल दसा ओसवाल इत्यादि जाति हाल जोवामां आवेछे, पण दसानी जाति बहूज जुज जोवामां आवे छे।

" महाजन वंशमुक्तावली " के अंतमें खरतड गच्छ की पट्टावली प्रसिद्ध कीगई है उसमें जिनपत्तिसूरि की हकीगत में लिखा है कि, इनों के समय चित्रावाल गच्छी चैत्यवासि जगश्चंद्र सूरिने वस्तुपाल तेजपाल की भक्तिसे क्रिया उद्धार करा। तप करणे से चितोड के राणाजीने सं० १२८५ में " तपा " विरुद दिया। वस्तुपाल तेजपाल लहुडी ज्ञात ओसवाल, पोरवाल, श्रीमालियों में करणे वाला माया का अखुड भंडारीने इनोंका नंदी महोत्सव करा। जिसने जगचंद्र सूरि की सामाचारी कबूल करी उस गरीब को श्रीमंत बणाते गया।

इस प्रकार वस्तुपाल तेजपाल की हयाति से बहुत पीछे तक सभी विव्दानोंका दसा बीसा भेद के संबंध में बिलकुल एक मत हैं।

इन प्रमाणों के अंतर विवरणों में अंतर है तो भी " वस्तुपाल तेजपाल विधवा जात पुत्र होने से महाजन ज्ञातियों में दसा बीसा का भेद उत्पन्न हुआ इस संबंध में सभी की एक वाक्यता है "।

सं० १२९८ में वस्तुपाल स्वर्गवासी हुए और तेरहसो आठ [१३०८] में तेजपाल का देहांत हुआ। इन के पश्चात् ५३ वे वर्ष में वढवाण में प्रबंध चिंतामणी की समाप्ति हुई, सं० १३६१ में। यह बिलकुल निकटवर्ति काल है।

दूसरे उस समय वस्तुपाल तेजपाल के पुत्रादि वंशज हयात थे ओर यह बात घर घर में मालुम होना संभव नहीं थी, परंतु इस में दशा वीसा का उल्लेख क्यों नहीं किया ? यह प्रश्न उपस्थित होता है। इसके उत्तर में अनुमानतः यही कहना होगा कि उक्त ग्रंथ प्रबंध–संग्रह है, नकि ज्ञातियों का इतिहास। दूसरे उस समय इस भेद को तड (तट) का रूपही होगा और उसका समझोता होनेकी लोगोंको आशा होगी। वस्तुपाल तेजपाल जैसी प्रधान राजमान्य यशस्वी तथा दानवीर व्यक्ति को उनके अंतके ५३ वर्ष पीछे ही असत्य कलंक लगना सहज नहीं है; अतएव उक्त प्रमाणों से जो दसा वीसा के भेदका कारण निश्चित हुआ है वह बिलकुल यथार्थ है।

मुर्तियों के लेखों से यदि देखा जावे तो स. १२३३ के पहिले दसा वीसा का भेद होना मालूम होता है। इतिहास हमे दिखता है कि, पाटण के राजदर्बार में महाजनों की बहुत चलती थी और उन्हें वहां बहुत मान सन्मान मिलता था। वहां पर राज्य में कर्ता-हर्ता महाजन ही थे। वह समय सिद्धराज तथा कुमारपाल का शासन काल था और उसी समय मारवाड आदि प्रांतों से महाजन लोग आकर गुजरात में बसे हैं। यदि दसा बीसा का भेद गुजरात से बाहर और कहीं पडा होता तो मारवाड, मालवा, से गुजरात में जाकर बसने वाले लोगों में भी वह पाया जाता; परंतु

ऐसा नहीं है। यह भेद न तो अकेले गुजरातियों में ही है और न अकेले मारवाड मालवीयों में ही है, किंतु सभी में पाया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि, सिद्धराज कुमारपाल के समय संवत् १२०० के पींछे और संवत् १४३३ के पहिले के मध्यवर्ती काल में यह घटना हुई होना चाहिये। वहां वस्तुपाल, तेजपाल का समय बिलकुल ठीक मिलता है, और ऊपरी निदर्शित प्रमाणों से यही कारण विश्वसनीय प्रतीत होता है। [वि. सं. १२७५] के मत भेद से तट [तड] होना और तड को ज्ञाति का रूप प्राप्त होना इसको १०० वर्ष का समय लगना कोई अधिक नहीं है।

तड से ज्ञाति कैसे बनी।

कोई भी ज्ञाति में तड पडती है तो वह प्रायः मत भेद, मानसन्मान, आपसी द्वेष आदि कारणों से ही पडती है। इन तडों के उत्पादकों में तथा पुष्टिकारकों में कितना भी मत भेद वा वितुष्ट हुआ तो भी वे एक दूसरे को विजातीय नहीं मानते, और एक न एक दिन फिरसे सम्मिलित होने की आशा रखते हैं। यदि साधारण मत भेद हो तो तड का निपटेरा सुलभता से हो जाता है अन्यथा जातीय द्वेष तथा मान सन्मान मूलक तड न्यायान्याय छोडकर टर का

रूप धारण कर लेती है, और उसके मूल उत्पादक दिवंगत हुए बिना वा मूल कारण का समझोता या विस्मरण हुए बिना उन्हों में एक्य होता नहीं। वस्तुपाल तेजपाल के समय की तड, मत भेद, द्वेष तथा मान सन्मान मूलक होने से उसका निपटेरा नहीं हुआ। कभी कभी मूल उत्पादकों के पीछे उनके संतानों में समझोता होकर ऐक्य हो जाता है; परंतु यदि संतान दर संतान–पीढी दर पीढी, उस द्वेष वृक्ष का सींचन होता रहे अथवा व्रण को ठीक न होने देते उसे बिगाडने का ही प्रयत्न होता रहे किंवा अयोग्य धर्म विरुद्ध वा जाति प्रथा से विपरीत कार्य करने वाले और भी दूषित लोक तड में समय पर संमिलित कर लिये गये तो कई साल पश्चात् तडका रूप बदल कर उनको भिन्न भिन्न ज्ञाति का स्वरुप प्राप्त होना संभवनीय है। ऐसी हालियत में निर्दोष तड उच्च श्रेणीकी तथा दूषित तड निम्न श्रेणीकी कही जाना अयथार्थ नहीं होता। पहिले तडको शाखा नाम से जाना जाता था। शाखा मूल वृक्ष की डालियां हुआ करती हैं अतएव मूल को वृद्ध और नव विकसित को लघु कहना भी अयोग्य नहीं। यही सबब है कि इन दोनों को "वृद्ध शाखा लघुशाखा का नाम दिया गया"।

तडपडने के अन्य कारणों में से मुख्य कारण ऐसा महत्व पुर्ण है कि, उस समय से दोसो चारसो वर्ष आगे तक

लोगों के धार्मिक तथा उच्च कुल वा उच्च जातीयता के भावों पर कुठाराघात किये बिना ऐक्य होना अशक्य था। उस समय तो ठीकही, अब भी भारत में उच्च गिनी जानेवाली जातियों में प्रतिलोम संबंध की प्रजा निम्न श्रेणि ही की गिनी जाती है और उस के साथ खानादि व्यवहार भी नहीं किया जाता। अतः वस्तुपाल तेजपाल और उन के साथियों को अपनी अपनी उच्च श्रेणि की मुख्य ज्ञातियों से अलग होना पडा इस में आश्चर्य क्या? और ऐसे निम्न समझे गये बहिष्कृत लोग सम्मिलित न किये जाने से उन की दसा नाम से संलग्न अलग अलग ज्ञातियां ही बनी रही इस में भी आश्चर्य क्या?

एक की फूट चौरासी में क्यों?

श्रीमाल में जो भिन्न भिन्न महाजन ज्ञातियां बनी उन का आपसी खान पानादि व्यवहार प्रचलित था, और बृहत भोज के समय वे सब एकत्र हुआ करती थी। भिन्नमालसे जाकर गुजरात आदि प्रांतों में जो भी महाजन लोक जा बसे तो भी उनका परस्पर व्यवहार स्थगित होनेका कहीं उदाहरण नहीं मिलता। विधवा जात पुत्र वस्तुपाल तेजपाल को पोरवाड जाति यदि ग्रहण करती तो अनीति का आदर तथा सभी महाजन ज्ञाति से विभक्तता होती। अर्थात् महाजनों की प्रथानुसार ऐसा करना सभी एकत्रित महाजन ज्ञातियों के

अधिकार में था। एवं सभी को इस का विचार करना पडा और सभी में मत भेद उपस्थित हुआ। इनमें एक पक्ष नीति और प्रचलित ज्ञाति-प्रथाओं का अभिमानी और दूसरा अधिकार तथा लक्ष्मी का दास बनकर अनीति को अपनानेवाला हुआ। इस प्रकार केवल पोरवाड में ही नहीं सभी महाजन ज्ञातियों में यह पक्ष भेद होकर सभी में दसा बीसा का भूत खडा हुआ।

जिस समय यह भेद उपास्थित हुआ उस समय विधवा विवाह बंद था अतः समयानुसार जो हुआ सो विपरीतही हुआ, परंतु जब हमें इतिहास दिखाता है कि, केवल एक बिधवा को संतती के कारण दसा पोरवाड मूल पोरवाडों से अलग किये गये तो विधवा विवाह के हिमायतियों को चाहिये कि, विधवा विवाह ज्ञाति में प्रचलीत करते समय दसाओं को मूल ज्ञाति में सम्मिलित कर लेवें। क्योंकि फिर दसा और वीसा में भेद भाव वा उच्च–निम्नता का प्रश्न ही कहां रहा। यों तो दसाओं मे विधवा विवाह प्रचलित किया गया नहीं। केवल विधवा जात संतान का पक्षपात किया गया है। परंतु आजकल विधवा विवाह का प्रश्न बहुत महत्व का तथा विचारणीय हो रहा है, और इस संबंध का विचार होने की आवश्यकता है। परंतु यहा विषयांतर के भय से लेखनी को रोकनाही ठीक होगा। अस्तु ! इस प्रकार उच्चनीच

वा दसा वीसा मानते मानते सं० १२७५ से आजतक लगभग ७११ वर्ष हो चुके। वीस वर्ष की एक पीढी इस न्याय से उस समय के पश्चात् प्रायः ३५ पीढियां हो चुकी, परंतु अब भी दसा तो दसा ही रहे उनमें उच्चता न आई। विधवा जात पुत्रों के साथ खाने में यदि इतनी पीढियों से भी अधिक तक मनुष्य को नीचता प्राप्त होंती है तो होटलों में तथा रेल्वे में कई समय निम्न श्रेणी के लोगों के साथ भोजन करने में अथवा अभक्ष्याभक्षियों को ज्ञातिमें सम्मिलित रखने में हम को न मालुम कितनी पीढियों तक नीचत्व प्राप्त होना चाहिये; परंतु इसका कोई विचार करने वाला है नहीं। बादशाही समय में हिंदुसे मुसलमान बने हुए अब शुद्ध हो सकते हैं परंतु दुर्भाग्य वश दसा बीसा का ऐक्य होना संभवनीय नहीं। क्या! पाठक इसका विचार करेंगे? पोरवाड ज्ञातिका ऱ्हास हो रहा है तो भी दसा बीसा, मालवी, गुजराती, मारवाडी, श्रीमाली, जांगडा, पद्मावती, जैन, वैष्णव, आदि भेद तो जैसे के तैसे प्रचलित हैं। हमारा इतिहास आज सप्रमाण सिद्ध कर रहा है कि, उक्त भेद कोई भेद नहीं है। दसा बीसा के अतिरिक्त बाकी सभी भेद केवल निवास स्थान भिन्नता तथा धर्म भिन्नता के ही हैं। हैं सब प्राग्वाट [पोरवाड] फिर ऐसा द्वैत, ऐसा भेदभाव क्यों? जब प्रवास के सुलभ साधन न थे, पत्र व्यवहार की सुव्यवस्था न थी, जान माल सुरक्षित न था तब के पडे हुए भेदोंको आज भी वैसे ही मानकर

लकीर के फकीर बने रहना यह कौनसी विद्वत्ता ? यह कौनसा न्याय !! इस संकुचिततासे अब न ज्ञातिकी वृद्धि होगी, न ज्ञाति में ऐक्य होगा, और न ज्ञाति संगठित होगी। यदि ज्ञाति को नामशेष न होने देना है, यदि पूर्वजों का गौरव स्थायि रखना है, तो शनैः शनै पोरवाड मात्र ने एक होना चाहिये। परस्पर रोटी बेटी व्यवहार प्रचलित करना चाहिये, और खोया हुआ वैभव फिरसे प्राप्त करके भारत में नहीं नहीं, संसारभर की सभ्य ज्ञातियों में अपने को धन्य कहला लेना चाहिये। अस्तु !

दसा बीसा के भेद का यहां तक विचार हुआ और यह सप्रमाण सिद्ध हुआ कि:—

(१) दसा, बीसा ज्ञाति की दो तड (तट) हैं। भिन्न भिन्न ज्ञातियां नहीं।

(२) यह भेदाभेद वस्तुपाल तेजपाल के विधवा जात होने के कारण सं. १२७५ में हुआ।

(३) गुजरात की प्रायः सभी महाजन ज्ञातियों में यह भेद है। अन्य प्रांत के महाजनों में नहीं। अतः सिद्ध होता है कि, मारवाड, मालवा. दक्षिण आदि प्रदेशों में जो जो महाजन दसा बीसा कहे जाते हैं वे मूल श्रीमाल (भिन्नमाल) तथा गुजरात से निकले हुए हैं।

पोरवाडों का श्रीमाल परित्याग।

श्रीमाल पुराण में कहा है कि विक्रम सं. १२०३ की वैशाक सुदि ८ को देवी लक्ष्मी गुजरात खंड में पाटण नगर को जावेगी, और लक्ष्मी के गमन के पश्चात् श्रीमाल नगर शून्य होगा, तथा हे राजा !! इस के पीछे यह नगर "भिन्न-माल" कहावेगा। लक्ष्मीजी जावेगी अर्थात् श्रीमाली लोक निर्धन होकर स्थान भ्रष्ट होंगे। (पृ. ६६८)

"सोहंकुलरत्न पट्टावली में लिखा है कि "सं. १३१३ में राव कान्हडजी ने पुराना खेडा भिन्नमाल बसाया"

लोकागच्छ की पट्टावलीपर से बुद्धिप्रकाश में प्रकाशित हुआ है कि "संवत ११७५ पीछे मारवाड में द्वादश वर्षीय दुष्काल हुआ।

बुद्धिप्रकाश के सन १८६८ के पृष्ट २४६ में निम्नोक्त चौपाई है:—

"अग्यार से छोतर नो दुष्काल,
भांगी पडयूं ते. पुर भिन्नमाल,
राजा हतो पाटण सिद्धराज
आवी वस्यो त्यां सघलो समाज."

"संवत १ ७५–७६ में जब कडवा कुणबियों का जथा मारवाड से पाटण आया तब सिद्धराजने उन को उंझे में स्थान दिया।"

इत्यादि प्रमाणों से मालुम होता है कि संवत ११७५-७६ अथवा लगभग १२०० के समय श्रीमाल नगर का लोक समुदाय वहां से चल कर गुजरात जांगल आदि देशों में जा वसा था। अर्थात् उसी समय पोरवाड भी श्रीमाल का त्याग कर गुजरात, जांगल, पद्मावती आदि समृद्धिशालि स्थानों में जा बसे।

सिद्धराजने जूनागड हस्तगत करने के बाद सौराष्ट्र के सूभायत पर श्रीमालियों की स्थापना की इस से तो सौराष्ट्र (काठियावाड) में श्रीमालियों को वसने की अच्छी संधी मिल गई। यही कारण है कि गुजरात काठियावाड में श्रीमालियों की अब भी बहुत वस्ती है। पाटण की उन्नति भी इसी कारण हुई। जब श्रीमालियों को व्यापार के वास्ते स्थान की आवश्यकता थी उसी समय सौराष्ट्र विजय होने से सिद्धराजने इन लोगों को वसाहत के वास्ते सौराष्ट्र दिया और वह श्रीमालियों से त्वरित भर गया।

वैसे ही कर्णदेवके समय लाट विजय होकर श्रीमालियों को वहां की सूभायत मिली और वहां जाकर बसने का श्रीमालियों को अवसर मिला, और वे कालांतर से लाड कहलाये।

श्रीमाल से जांगल देश भी बहुत पास होनेसे कई श्रीमाली उस देशमें भी जा वसे, और कालांतर से 'जांगला' (जांगडा पोरवाड) कहाते हैं। ये लोक मुख्यतः जैन हैं। इस शाखा के चोवीस गोत्र माने जाते हैं यथाः—

चौधरी, काला, धनगर, रतनाव, धनोत, मजावर्या, डबकरा, भादलिया, कामलिया, शेठिया, उधिया, वेखंड, भूत, फरक्या, भलेपरिया, मंदोवरिया, मुनिया, घांटिआ, गलिया, नवेपर्या, दानगड, महता, खरडिया, और भेसोता।

इसी समय पद्मावती नगर भी उन्नतावस्था को पहुंचा हुआ था। वहांपर श्रीमालियों का जा बसना असंभव नहीं। वहां रहनेवाले पद्मावती कहाये।

पद्मावती और जांगडा पोरवाडों के संबंध के अधिक प्रमाण अभी उपलब्ध न होनेसे विस्तार पूर्वक लिख नहीं सकते परंतु इस मे संदेह नहीं कि, पोरवाड नाम धरानेवाली भिन्न भिन्न ज्ञातियां एकही मूल वृक्षकी शाखाएं हैं, और इस वृक्षकी जडें श्रीमाल नगर में बहुत गहरी जमी हुई हैं। पोरवाड़ ज्ञाति का महास्थान श्रीमाल नगर ही है। जो भी वे चक्रवर्ती पुरुरवा के पूर्व से भेजे हुए श्रीमाल के रक्षणकर्ता योद्धा थे और जो भी उनका खास निवास पूर्व में पुरुरवा के राज्य में था तो भी वे श्रीमाल में आने के पश्चात् ही "प्राग्वाट" (पोरवाड़-पोरवाल) कहाये। श्रीमाल में आने के पहिले एक प्रमाण से वे पुरुरवा के

दस हजार पुत्र कहे जासकते हैं परंतु असंभव को संभवनीय कहना अयथार्थ है। पुरुरवा को दस हजार पुत्र होना संभवनीय नहीं; तोभी प्रजा पुत्र समान ही होने के कारण पुराण लेखक असत्य का दोषी नहीं होता। ये दस हजार पुरुष क्षत्रिय योद्धा होना ठीक और सयुक्तिक है। एवं श्रीमाल को आने के पश्चात ही ये दस हजार योद्धा समुच्चयरूप में "प्राग्वाट कहाये" एतदर्थ पोरवाडों की उत्पत्ति श्रीमाल से कहना ही ठीक है।

उक्त श्रीमाल नगर जो भी द्वादश वर्षीय दुष्काल के कारण नष्ट होगया है तो भी पोरवाड तथा अन्य श्रीमाली ज्ञातियोंने उसे भूल जाना लांछनास्पद है; परंतु खेद है कि कई श्रीमाल के सुपुत्र अपनी जन्म-भूमि के नाम को भी आजकल नहीं जानते हैं।

पोरवाडों के गोत्र।

इस ज्ञाति के गोत्र पाठकों के सन्मुख रखने के पहिले गोत्र किसे कहते हैं इस बात का विवरण करने की आवश्यकता है। अमरकोष में गोत्र के अर्थ में निम्नोक्त शब्द बताये हैः—

संतति, गोत्रम् जननमकुलम, अभिजनः, अन्वयः, वंशः, अन्ववायः, संतानः (अमर. ब्रम्हवर्ग श्लो. १)

अर्थात् जिस नाम से कुल पहिचाना जावे वा जिस मूल पुरुष से कुलपरंपरा चली हो वह गोत्र होता है। यह गोत्र परंपरा लगभग दो हजार वर्ष से प्रचलित कही जाती है। ब्राम्हणों में यह अद्यावधी चल रही है। संध्या वंदनादि हरएक धर्मकृत्य में अहर्निश गोत्रोच्चारण किया जाता है। ब्राम्हणों के अनुसार क्षत्रिय वैश्यों को भी गोत्र थे, क्यों कि ये भी स्वतंत्र ज्ञातियां हैं। हरिवंश, इक्ष्वाकुवंश, रघुवंश कुरुवंश, यदुवंश, आदि; परंतु अब यह गोत्र परंपरा वैश्य क्षत्रियों में बहुत कम प्रचार में है। श्री महावीर स्वामी तथा गौतम बुद्ध के समय के बृहत् धर्म विप्लव में क्षत्रिय वैश्यों की प्राचिन गोत्र परंपरा नष्ट होकर नयी जैन साधु प्रणित गोत्र परंपरा प्रचलित हुई। यों तो "गुजरात में गोत नहीं मारवाड में छोत नहीं" परंतु हिंदु-धर्म के देखा देखी जैन गुरुओंने नव दिक्षित जैनों में गोत्र परंपरा चालू की। इसमें न तो कोई नियम पालन हुआ है और न कोई कुल परंपरा को स्थान दिया गया है। गुरु-ओंने मनगठंत उटपटांग गोत्र निश्चित कर दिये हैं। उदाहरण के लिये दो चार गोत्रों की उत्पत्ति दी जाती है।

मंडोवर के राजा का कुष्ट रोग श्री जिनदत्त सूरिने गाय का मक्खन लगवाकर ठीक किया तब राजा के साथ शर्त की गई थी कि रोगनाश होने के पश्चात् जैन-धर्मका अंगिकार करना होगा। उक्त शर्त के अनुसार राजा जैन हुआ। जिस गाय का मक्खम उसके शरीर को लगाया गया उसका नाम कुकडी था

अतः उस राजा का कुकड गोत्र निश्चित किया। राजा के शरीर पर गणधर नाम के कायस्थने मक्खन लगाया था। वह भी राजा के साथ जैन हुआ तब उसका मक्खन चुपड़ा सबब "चौपड़ा" गोत्र ठहराया।

श्री वर्धमान सूरिने सं. १०२६ में दिल्ली के राजकुमार सोनगरा चौहाण बोहित्थ कुमार को रस्सी का सांप बनाकर दंश करवाया और जैन होने की शर्त पर उसे जीवित किया तब उसका "सचेती-संचेती" गोत्र ठहराया।

संवत ११५५ में डीडोजी नाम का खीची राजपूत गुजरात में डकेती करता था उसको श्री जिनवल्लभ सूरिने जैन बनाया और उसका "धाडीवाल" गोत्र स्थापन किया। इनके एक वंशज को राज-कोठारी की जगह मिली तब उसके वंशज कोठारी कहाये। इसी धाडीवाल कुल में एक के सिरपर गंज (गुजराती में टांट कहते हैं) थी इससे टांटिया (गंजा) कहने लगे जिससे उसके वंशज टांटिया कहाये।

ऐसी उटपटांग अडक को थोडा समय व्यतीत होने बाद गोत्र का नाम प्राप्त हुआ। इन्हें गोत्र मानना केवल हास्या स्पद है। गोत्र तो वही होते हैं जिससे कि कुल की खास उन्नत्ति हुई हो।

आजकल पोरवाडों में तो प्रतिशत दस मनुष्य को भी अपना गोत्र याद नहीं होता। कहीं २ श्रीमाली गोर जा जाकर

भोलेभाले पोरवाडों को मनमाने गोत्र बता देते हैं, और उनसे अपने पेटकी भेट लेकर नोदो ग्यारह होजाते हैं। इधर भेंट देने वाला ब्रह्म वाक्यं समझकर अपने को कोई चोहान कोई रायठोर, कोई फूल मगेरा समझकर फूले नहीं समाते पोरवाडों का क्षत्रियत्व तो इतिहास सप्रमाण सिद्ध करता है परंतु इनों के गोत्रका कोई सप्रणाम इतिहास अभी उपलब्ध नहीं हुआ है। ऊपर कहे अनुसार जैन साधु प्रणित गोत्रों का उल्लेख कुछ लेखों में उपलब्ध हुआ है वे पाठकों के अवलोकनार्थ दिये जाते हैं।

१ ठकुर गोत्र।

नगर (मारवाड) श्री भीडभंजन महादेव के मंदिर में सूर्य के दोनों तरफ श्री मूर्तियों की चौकीपर बांये तरफ का लेख।

१ ॥ॐ॥ संवत १२९२ वर्षे आषाढ सुदि ७ रवौ श्री नारदमुनि विनिवेशीते श्री नागरवर महास्थाने सं. ९०८२ वर्षे—

२ अति वर्षाकाल वशादति पुराणं तयाच आकस्मिक श्री जयादित्य देवीय महा प्रसाद पत्तन विनष्टायां श्री रत्ना देवी मूर्तो।

३ पश्चात् श्रीमत् पत्तन वास्तव्य प्राग्वाट ठ० श्री चंडपात्मज ठ० श्री चंडप्रसादांगज ठ० श्री सोमतनुज ठ० श्री आसाराज नन्द।

४ नेन ठ. श्रीकुमार देवी कुक्षि संभूतेन महामात्य श्री वस्तु पालेन स्वभार्या मय्या ठ. कन्हड पुत्र्याः ठ० संपूत्कुक्षि भवा ।

५ याः महं श्री ललिता देव्या पुण्यार्थं मिहैव श्री जयादित्य देव पत्न्या श्री रत्नादेवी मूर्तिरियं कारिता ॥शुभमस्तु॥ उक्त लेख में ठकुर लिखा है परंतु इनका गोत्र "ठकुर" न था यह तो वे जागीरदार होने के कारण ठकुर लिखे जाते थे । इनका गोत्र था । "उवरड"

२ मूठलिया गोत्र ।

श्री जगत्सेठ का मंदिर—महिमापुर ।

सं. १५३६ व० फा० सु० १२ प्राग्वाट व्य० हीरा भा० रुपादे पुत्र व्य० देपा भा० गी (गो) मत्ति पुत्र गांगा केन भा० नाथी पु० भेरा भा० गोगादि कुटुंब युतेन श्री नेमिनाथ बिंबं का० प्र० तपागच्छे श्री लक्ष्मीसागर सूरिभिः पींडरवाडा ग्रामे मूठलिया वंशे श्रीः ।

३ दोसी गात्रे ।

सेठ नसी केशवजी का मंदिर—पालिताणा.

सं. १६१४ वर्षे वैशाख सुदि २ बुधे प्राग्वाट भातीय दोसी देवा भार्या देमति सुत दो० बना भार्या बनादे सु० दो० कुधजी नाम्ना पितुश्रेयसे श्री पार्श्वनाथ बिंबं कारापितं तपा-

गच्छाधिराज भट्टारक श्री विजयसेन सूरि शिष्य पं० धर्म विजय गणिना प्रतिष्ठित मिदं मंगलंभूयात् ।

४ संघवी गोत्र ।

मोतीसाह टोंक का लेख ।

सं. १५०३ जेष्ट सु. ९ प्राग्वाट सं० काया भार्या हांसलदे पुत्र झाझणेण भार्या नागलदे पुत्र मुकुंद नारद भ्रातृ धन्ना श्रेयसे जीवादि कुटुंबं युतेन निज पितृ श्रेयसे श्रीनमिनाथ बिबं कारितं प्र. तपागच्छे श्री जयचंद्र सूरि गुरुभिः ।

५ कोठारी ।

पींडरवाडा—सिरोही राज्य ।

ॐ संवत १६०३ वर्ष महा विदि ८ शुक्रे श्री सिरोही नगरे रायश्री दुर्जन सालजी विजय राज्य, प्राग्वंशे कोठारी छाछो भार्या हांसिलदे पुत्र कोठारी श्रीपाल भार्या खेतलदे तस्य पुत्र कोठारी तेजपाल राजपाल रतनसी रामदास.. बाई लाछलदे श्रेयोर्थं पींडरवाडा ग्रामें श्री महावीर प्रसादे देहरी कारापितं । श्री तपागच्छे श्री हेम विमलसूरि तत्पट्टे श्री आणंद विमल सूरि तत्पट्टे श्री विजयदान सूरि । शुभं भवतु कल्याण मस्तु श्रा० वा० लाछलदे श्रे० ।

६ झूलर गोत्र ।

मिर्जापुर–पंचायती मंदिर ।

सं. १४८२ व० वैषाख वदि १ प्रा. झूलर गोत्र सा० लाहड भा० वाहिणदे पु० महिराज जिन पितृव्य सोमसिंह आत्म श्रे० श्री वासपूज्य बिंबं कारितं प्र० श्री धर्मघोषगच्छे श्रीमलयचन्द्र सूरि पट्टे श्री पद्मशेखर सूरिभिः ॥ ६ ॥ श्री ॥

७ लीवां गोत्र ।

कलकत्ता–माणिक तल्ला ।

सं. १५५७ वर्षे माघ वदि १२ बुधे प्रा० सा० गेला भा० चांदू सुत सा० राजा बना तपा हरपाल भार्या जीवेणी सु० हासा वसुपालादि कुटुंब सहितेन कारापितं श्रीकुन्थुनाथ बिंबं प्रतिष्ठितं सूरिभिः सीणोत नगरी–गोत्र लीवां ।

८ भंडारी गोत्र [धार]

जोधपुर—धर्मनाथजी का मंदिर ।

सं. १५०४ वर्षे वै० शु० ३ प्राग्वाट ज्ञा० श्रे० भंडारी शाणी सुत श्रे० खीमसी सायाभ्यां भा० मदीख तजता मालादि कुटुंब युताभ्यां स्वश्रेयसे श्रीमुनिसुव्रत स्वामि बिंबं का प्र० तपा श्री सोमसुंदर सूरि शिष्य श्री जयचंद्र सूरिभिः धारवास्तव्यः । शुभं भवतु ॥

९ दोसी गोत्र ।

सं. १५९७ वर्षे पोस वदि ५ सकरे सहूआ॰ळा वास्तव्य प्राग्वाट वृद्ध शाखायां दो॰ वीरा भा॰ भाणा भा॰ भरमादे तेन स्वश्रेयसे आदिनाथ बिंबं का॰ प्र॰ श्री जिन साधु सूरिभिः ।

१० अबाई गोत्र ।

उदयपुर—मेवाड ।

संवत १६२० वर्षे फाल्गुण शुदि ७ बुधे कुमरगिरिवासि प्राग्वाट भातीय वृद्ध शाखायां अबाई गोत्रे व्यवहा॰ खीमा भा॰ कनकादि पुत्र व्य॰ ठाकरसी भा॰ सोभागदे पुत्र देवर्ण परिवार युतेन स्वश्रेयोर्थं श्रीधर्मनाथ बिंबं कारितं । प्रतिष्ठितं श्रीबृहत्तपागच्छे श्रीपूज्याराध्य श्रीविजयदान सूरिपट्टे श्रीपूज्य श्री श्री श्री हीर विजय सूरिभिः आचंद्रार्कं नन्द्यात् ॥ श्री ॥

११ कोठारी गोत्र ।

उदयपुर—मेवाड ।

सं. १५०७ वर्षे कार्तिक सुदि ११ शुक्रे प्राग्वाट कोठारी लाखा भा. लाखणदे पुत्र को॰ परवत........भेला डाहा नाना डुंगर युतेन श्री संभव नाथ बिंबं कारितं उएस गच्छे श्री सिद्धाचार्य संताने प्रति॰ श्री कक्क सूरिभिः ॥

१२ संघवी गोत्र ।

उदयपुर—मेवाड ।

संवत १५२१ वर्षे ज्येष्ट सुदि ४ मण्डप दुर्गे प्राग्वाट सं० अजन भा टबकू सुत सं० वस्ता भा. रामा पुत्र सं० चाहाकेन भा. जीविणि पु. सं. भाग आडादि कुटुम्ब युतेन स्व श्रेयसे श्री चंद्रप्रभ २४ पट्ट का. प्र. तपा पक्षे श्री रत्नशेखर सूरि पट्टे श्री लक्ष्मी सागर सूरिभिः ॥

१३ संघवी गोत्र ।

आग्रा–रोशन मुहल्ला–श्रीमंदर स्वामी का मांदर चोवीशी पर ।

संवत १५३६ ज्येष्ट शु. ५ प्रा. ज्ञातीय सं. पूंजा भा. कर्मादे पुत्र सं० नरजय भा० नायकदे पुत्र सं. खीमा केन भा० हरखमदे पुत्र परवत गुणराज प्रमुख कुटुम्ब युतेन श्री आदिनाथ चतुर्विंशति पट्टः कारितः प्र० लक्ष्मी सागर सूरिभिः । सिरोही नगेरे ॥

१४ संघवी गोत्र ।

आग्रा–नमक मंडी–श्री शांतिनाथ का मंदिर।

सं. १५५४ वर्षे माहवदि २ गुरौ प्राग्वाट ज्ञातीय शृंगार संघवी सिद्धराज सुस्रावकेन भार्या ठणकु साकूपा भार्यारम्मेद मुख्य कुटुम्ब सहितेन श्री सुपार्श्वनाथ बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री सूरिभिः ॥

१५ नाग गोत्र ।

पालिताना–सुमति मंदिर–माधोलाल धर्मशाला धातु मुर्तिपर ।

सं. १७०२ वर्षे मार्गशीर सुदि ६ शुक्रे श्री अंचल गच्छाधिराज पूज्य भट्टारक श्री कल्याण सागर सूरिश्वराणामुपदेशेन श्री दिव बंदि [द] र वास्तव्य प्राग्वाट ज्ञातीय नाग गोत्रे मंत्रि विमल संताने मं. कमलसी पुत्र मं. जीवा पुत्र प्रेमजी सं. प्रागजी मं. आनंदजी पुत्र केशवजी प्रमुख परिवार युतेन स्व-पितृ मं. जीवा श्रेयार्थ श्री आदिनाथ बिंब कारितं प्रतिष्ठितं चतुर्विध श्री संघेन ॥

१६ संघवी गोत्र ।

करेडा–मेवाड–पंचतीर्थीपर ।

सं. १५०९ वर्षे माघ सुदि ५ शुक्रे प्राग्वाट वंशे सं. कर्मट भा. माजू पु उद्धरणेन भार्या सोहिणी पुत्र आल्हा वीसा नीसा सहितेन श्री अंचल गच्छेश श्री जय केसरी सूरि उपदेशेन स्वश्रेयसे श्री वासुपुज्य स्वामि बिंबं कारितं प्र. श्री संघेन ॥

१७ गांधी गोत्र ।

जेसलमीर–अष्टापदजी का मंदिर–पंचतीर्थियोंपर ।

सं. १५३३ वर्षे पौषवदि १७ प्राग्वाट ज्ञा. गांधी हीरा भा. हेमादे पुत्र चाहिता केन भा. लाली पुत्र समरसी भार्या

लाडकी प्रमुख कुटुम्ब युतेन स्वश्रेयोर्थं श्री नमिनाथ बिंबं का. प्र. तपा गच्छे श्री लक्ष्मीसागर सूरिभिः। विसल नगर वास्तव्य ॥ श्री ॥

१८ दोसी गोत्र।

ॐ ॥ उँ ॥ नमः संवत (१६) २० वर्षे आषाढ सुदि २ खौ गांधार वास्तव्यं। प्राग (वंश) दोसी। श्री गोइयासुत दौ। नेजपाल भार्या बाई (भोड) की सुत दौ। पंचारणा भ्रात दौ। भीम दौ। ननें। दौ देवराज प्रमुख (स्व) कुटुंबुबेन युतः। श्री महावीर देव कुलिका। कारापिता हर्षेण। तपा गच्छे विबुध शिरोमणि श्री विजयदान सूरि श्री हीर विजय सूरि प्रसादा (त) शुभं भवतु ॥ श्रीः ॥ श्रीः ॥ श्रीः ॥

[एपि ग्राफिया इंडिका—२-४८]

उक्त शिलालेखों से पोरवाडों के जो गोत्र मिले हैं वेः—

१ ठकुर २ मूठलिया ३ दोसी ४ संघवी ५ कोठारी ६ झूलर ७ लिवां ८ अबाई ९ नाग १० गांधी ११ भंडारी १२ उबरड है; परन्तु यह गोत्र वैसेही आचार्य प्रणित अटक रुपि हैं।

श्रीमाली गोर मालव निवासी कइ पोरवाड महाजनों को उनके गोत्र बता गये हैं वे निम्नोक्त हैंः—

१ पडियाल २ राठोर ३ सिसोदिया ४ तवेरचा ५ मंडलिक ३ वाबलेशा ७ फूल मगेरा ८ सोनल

यदि श्रीमाल पुराण पर बिश्वास किया जावे तो पोरवाड [प्राग्वाट] पुरुरवा के भेजे हुए क्षत्रिय अवश्य हैं, और उन्हें पुरुरवा के पुत्र कहे हैं। पुरुरवा अग्नि कुल में ३४ वे राजा थे अर्थात पोरवाड अग्नि कुलके हुए। अग्निकुल के उत्पादक श्री वशिष्ट ऋषि थे। एवं अग्निकुल का गोत्र 'वषिष्ट' हैं। अर्थात् पोरवाड महाजन वषिष्ट गोत्रीय हुए।

यदि पुरुरवा के भेजे हुए दस हजार योद्धा माने जावें तों वे सम्मिलित क्षत्रिय होना निश्चित होता है। अतः श्रीमाली गोरों के बताये हुए ऊपरी गिदर्शित गोत्रों में कुछ सत्य का अंश प्रतीत होता है; परन्तु निश्चित रूपसे अभी कुछ भी निर्णय पोरवाडों के गोत्रों के संबंध में नहीं हो सकता।

चरित्रादि।

विमल शाह।

विमल शाह का विश्वसनीय चरित्र आजतक उपलब्ध नहीं हुआ। उनके समकालिन किसी लेखक ने उनका चरित्र नहीं लिखा तो भी जैन समाज तथा आबूके उनके जगत्प्रासद्ध मंदिर को देखने वालों की स्मृती से विमल शाह का नाम नहीं मिट

सकता। ऐसे महान पुरुष का चरित्र जैन साहित्य में न होना सखेदाश्चर्य की बात है। विमलसे ४०० वर्ष पीछे 'लावण्य समय' नामक जैनाचार्य विक्रम सं. १५६८ में छन्द बद्ध 'विमल प्रबंध' नामका एक ग्रंथ लिखा है, परंतु उसमें सत्य की अपेक्षा कवि कल्पना अधिक है।

विमल प्रबंध पढने के पश्चात् ओझाजी ने जो ऐतिहासिक सत्य सार उस से खींचा है वह ऐसा कि,—

विमल प्राग्वाट ज्ञाति का श्रीमाल (२) गोत्र का महाजन था। वह निनग का प्रपौत्र, लिहर का पौत्र और वीरका पुत्र था। एक बार यह गुजराथ का चालुकय राजा भीमदेव का दंडनायक हुआ और वि. सं. १०८८ में उसने आबू पर विमल वसहि नामका आदिनाथ का मंदिर बनवाया। इस मंदिर में भी उसके बनने के समय की कोई प्रशास्ति नहीं लगाई गई। इसी कारण विमल और उसके कुटुम्ब का वास्तविक चारित्र अंधःकार में ही है।

आधुनिक खोज से मिले हुए शिलालेखों में से केवल तीनही ऐसे हैं जिनमें विमल का कुछ वृत्तांत मिलता है। पहिला शिलालेख वि. सं. १२०२ का है जिस से पायाजाता है कि श्रीमालकुल और प्राग्वाट वंशमें धर्मात्मा निन्नक हुआ। वह बहुत श्रीमान था, परंतु किसी करण संपत्ति नष्ट होजाने से भिन्नमाल छोडकर वह गुजरात के गांभू ग्राममें जा बसा। वहां

वह फिरसे धनाढ्य हुआ। वि. सं. ८०२ में अणहिल नामक पुरुषने बताई हुई जगह पर वनराज चावड़ाने 'अणहिलपुरपट्टण' बसाया। वहां वनराज श्रेष्ठ निनग और उसका पुत्र लहर को ले आया। वहां इनको विशेष वैभव सुख और कीर्ति प्राप्त हुई। निनग को वनराज पिता समान मानता था। लहर को शूरवीर देखकर वनराज ने अपना सेनापति बनाया। और "खंडस्थल" नामक गाम भेंट दिया। वह नीतिज्ञ देवता और साधुओं का भक्त, दानशील, दयालु और जिन धर्म का ज्ञाता था। उसका पुत्र महत्तमवीर मूलनरेंद्र [चालुक्य राजा मूल] की सेवा में रहता था। वह बुद्धिमान, उदार और दानी था। वह वि. सं. १०८५ में साधु हुआ। उसका जैन धर्मनिष्ठ ज्येष्ठ पुत्र "नेढ" मंत्री बना और दूसरा विमल दंडाधिपति [दंड नायक] हुआ। इसके आगे नेढ की वंशावली है। ❀

❀ श्री श्रीमाल कुलोत्थ निर्मलतर प्राग्वाट वंशांबरे। भ्राजच्छीत करोपमो गुणनिधः श्री निन्नकाख्यो गृही; आसिद्ध वस्त समस्त पाप निचयो विज्ञो वरिष्ठाशयः धन्या (न्यो) धर्म निबद्ध सु (शु) द्ध धि (ष) पणः स्वाम्नाय लोकाग्रणीः ॥२॥ सकल नय विधिज्ञो भावतो देवसाधु प्रतिदिन मति भक्तो दानशीलो दयालुः. विदित जिनम तोलं धर्म कर्मानुरक्तः 'लहर' इति सुपुत्र स्तस्य जातः पवित्रः॥ ३ ॥ प्रावाजाजित दर्पलारि निचयो यो जैन मागपर-मार्हत्य सुविशुद्ध मन्वय वश प्राप्त समारात्य (ध्य) च, श्रीमान मूल नरेन्द्र सन्निधि सुधा निस्फंद संसेकित प्रज्ञा पात्रमुदात्त दान चिरतस्तत्सूनुरासीद (व्द) र ॥४॥ निज कुल कमल दिवाकर कला सकलार्थि सार्थ कलातरु, श्रीमद्वीर महत्तम इतियः ख्यातः क्षमावलये ॥ ५ ॥ श्री मन्नेढो धि धनो धीरचेता आसीन्मन्त्री जैन धर्मै कनिष्ठः आद्यः पुत्रस्तस्य मानी महेच्छ त्यागी भोगी बन्धु पद्माकरेंदु ॥ ६ ॥ द्वितीय को: द्वैत मतावलंवी दंडाधिपः श्री विमलो बभूवः येनेदमुच्चैर्भवसिंधु सेतु कल्पं विनिर्मापितमत्तावश्म ॥ ७ ॥

विमल को कोई पुत्र था या नहीं इसका पता नहीं लगा; क्योंकि विमल के पीछे की वंशावलि नहीं मिलती। केवल एक लेख उक्त मंदिर में. अंबाजी की मूर्ति पर खुदा हुआ है। उसका आशय है कि, विमल के वंशज अभय सिंह के पुत्र जगसिंह, लखमसिंह और कुरुसिंह हुए, तथा जगसिंह का पुत्र भाण हुआ इन सबने मिलकर विमल वसही में अंबाजी की मूर्ति स्थापित की। ❀

तीसरा शिला लेख विमल वसही के जीर्णोद्धार का वि. सं. १३७८ का है; जिसमें लिखा है कि, चंद्रावती का राजा धंधु (धंधुक, धंधुराज) वीरों का अग्रणी था। जब उसने राजा भीमदेव की सेवा स्ववीकार न की तब राजा (भीमदेव) उसपर बहुत क्रुद्ध हुआ। जिससे व मनस्वी (धंधुक) धारा के राजा भोज के पास चला गया। फिर राजा भीमदेव ने प्राग्वाट वंशी मंत्री विमल को आबूका दंडपति (सेनापति) वनाया। उसने वि. सं. १०८८ में आबू के शिखर पर आदिनाथ का मंदिर बनवाया। †

❀ संवत १३९४ वर्षे जेष्ट वदि ५ शनौ महं० विमलान्वये ठः अभय सिंह भार्या आहिवदे पुत्र महंजगतासिंह लखमासिंह कुरासिंह महंजगतासिंह भार्या जेतलदे तत्पुत्र महंभाण [मंडल माण] केन कुटुंब सहितेन विमल वसहिकायां देव्याः श्रीः अंबिकायाः। मूर्ति कारिता। प्रतिष्ठिता।

† तत्कुल कमल मरालः कालः प्रत्यर्थि मंडली का नाम। चंद्रावती पुरीशः समजान वीराग्रणिर्धंधुः ५ ॥ श्री भीमदेवस्य नृप य सेवामलभ्यमानः किलधन्धुराजः; नरेश रोषाश्च ततो मनस्वी धाराधिपं भोज नृप प्रपेदे ॥ ६ ॥ प्राग्वाट वंशाभरणं वभूव रत्न प्रधानं विमलाभिधानः ॥ ७ ॥ ततश्चभीमेन नराधिपेन प्रताप वन्हि विमली महामतिः। कृतोर्बुदे दंडपतिः सतां प्रियो प्रियं वदो नन्दतु जन- शासने ॥ ८ ॥ श्री विक्रमादित्य नृपाद्व्यतीतेऽष्टाशीतियाते शरदां सहस्रे; श्री आदि देवं शिखरेर्बुधस्य निवेशितं श्री विमलेन वंदे ॥ ११ ॥

(आबूका शिलालेख)

जिनप्रभु सूरि ने अपने तीर्थकल्प में अर्बुद कल्प के प्रकरण में लिखा है कि, जब भीमदेव धांधुक पर कृद्ध हुआ तब विमल ने भक्ति से भीमदेव को प्रसन्न कर धांधुक को चित्रकूट [चितौर] से वि. सं. १०८८ में धांधुक की आज्ञा लेकर बडे खर्च से विमल वसही नामक मंदिर बनवाया। चित्तौर उस समय धार के राजा भोज देव के अधिकार में था और भोज वहां रहा भी करता था।*

विमल बडा बहादुर था उसने मालवा और सिंध पर आक्रमण कर अच्छी जीत मिलाई थी। पोरवाड महाजन व्यवहारज्ञ होते हैं वैसे बहादुर § भी होते हैं। समय पडने पर कायरता नहीं दिखाते। वालीनाथ की हकीगत पहिले पाठक पढ ही चुके हैं।

विमल वसहीः—

अर्बुदाचल पर विमलशाहने जो अनुपम मंदिर बनवाया है वैसा शिल्प का उच्चतम नमुना संसार भर में केवल वही

---

* राजानक श्री धान्धु के कृद्धं श्रीगुर्जरेश्वरम्;
प्रसाद्य भक्त्या तं चित्रकूटा दानीय तद्गिरौ ॥ ३९ ॥
विक्रमे वसुवस्वाशा १०८८ मितेऽब्दे भूरि वैभवात्,
सत्प्रासादं सविमल बसत्यव्हं व्यधापयत् ॥ ४० ॥
(तीर्थकल्प-अबुदकल्प).

§ तद्धीत्याऽष्टादश शत ग्रामाधिप धार नृपो नष्टवा सिंधुदेशेगतः। तदनुशाकंभरी, मरुस्थली, मेदपाट, ज्वालापुरादि नृपति शत अम्बिका प्रसादात् साधयित्वा छत्रमेकमधारयात्। (उपदेश-माला)

है। वस्तुपाल के मंदिर से यह और भी बढा चढा है। इस में मुख्य मूर्ति ऋषभ देवकी है। इसके दोनों ओर एक एक खडी मूर्ति है। मुख्य मदिर के सामने विशाल सभा मंडप ओर चारों तरफ छोटे छोटे जिनालय हैं। और भी यहां धातु तथा पाषाण की कई मूर्तियां हैं। इस मंदिर की कारागिरी की जितनी प्रशंसा की जावे उतनी ही कम होगी। स्तंभ, तोरण, गुंबज, सभामंडप, छत, दरवाजे आदि सब जगह कारागिरी की असीम सीमा की गई है। कर्नल टॉड लिखते हैं कि:—

"भारत भर में इस मंदिर की बनावट सर्वोत्तम है। एवं जो उद्गार वस्तुपाल तेजपाल के मंदिर के वास्ते निकले हैं वैसेही किंबहुना अधिक इसके लिये निकलते हैं। इस के बनने के प्रायः देढसो वर्ष पश्चात् मंदिर के सामने हस्तिशाला बनी है। इसमें द्वार के सामने बिमलशाह की अश्वारुढ मूर्ति बनी है। हस्ती शाला में संगमर्मर की दस हथनियां * हैं जिनपर पुरुष सवार थे परन्तु अब

---

* हस्ति १ स० १२०४ फागुण सु० १० शनौदिने महामात्य श्री निनु कस्य.
,, २ ,, ,, शनि ,, ,, श्री लहर कस्य.
,, ३ ,, ,, शनौ ,, ,, श्री वीर कस्य.
,, ४ ,, ,, ,, ,, श्री नेढ ,,
,, ५ ,, ,, ,, महामात्य श्री धवल ,,
,, ६ ,, ,, ,, श्री आनंद ,,
,, ७ ,, ,, ,, श्री पृथ्वी पालस्य.
,, ८ १२३७ आषाढ सुदि ८ बुध दिने पउन्तार [?] ठ. जगदेवस्य
,, ९ ,, ,, ,, महामात्य श्री धनपालस्य
,, १० ... ...

केवल दो तीन रहगये हैं। वि० सं० १२०२ के शिलालेख से पाया जाता है कि पहिले तीन विमल के पूर्वज और चौथा नेढ़ उसका बडा भाई था। बाकी पांच हथनियों पर के पुरुष कौन थे यह निश्चित करना है। उक्त १२०२ वाले लेख में नेढ का पुत्र का पुत्र लालिग, उसका महिंदुक और महिंदुक के दो पुत्र हेम और दशरथ का होना बताया है; परंतु इन के नाम की कोई हथनी शाला में नहीं है।

हरिभद्र सूरी रचित प्राकृत काव्य "**मल्ल चरित**" में (३ प्रस्ताव) बताया है कि नेढका धवलक, राजाकर्ण का मंत्री हुआ। इसका पुत्र पृथ्विपाल, कुमारपाल का मंत्री रहा उसने आबू के विमल के मंदिर की हस्तिशाला ‡ बनवाई उक्त मंदिर के वि. सं. १२४५ के शिला लेख से स्पष्ट होता है

---

‡ अहनेढ महामइणो तणओ सिरि कण्ण एव रज्जम्मि; जाच्यो नियजस धवलिय भुवणो धवलोत्ति मन्तिवरो। जयसिंहराव रज़्जे गुरु गुण वस उल्लसन्त महाम्यो; जा श्री भुवणाण हो आणं हो नाम सचिविंदो। अहासिद्धि राम सिरि कुमरवाल गवा वणिंद तिलयाणाम्: पुण्ण भरभार विहुरियमुव्वद ठुण्ण पुहवी पीढम्। सिरिकुमर वाल नरनायगाण रज्जेसु; सिरि पुहइ वाल मन्ती अवितह नामोइमों विहिओ। अव्वुय गिरिम्मि सिरिनेढ विमल जिण मन्दिरे करावेउम्; मण्डवमइय विम्हय जयणं पुरओ; पुणोतस्स। विलसिर करेणु माण सवंस पुरिसोत्तमाण मुत्तीओं; किहियंच सघभत्ति वहुत्थ युवत्थ दाणण।

कि, पृथ्वीपाल का पुत्र ठकुर* जगदेव था ❀। महामात्य पृथ्वी-पाल को धनपाल नामक एक पुत्र और था §। इस प्रकार निश्चित है कि, इन नव हथिणी सवारों में से पहिले तीन विमल के पूर्वज चवथा उसका बडा माई नेढ और बाकी के पांच नेढ के वंशधर हैं। यह भी निश्चित हुआ कि हस्तीशाला वि. सं. १२०४ में बनी उसमें सात हथिनी उसी समय स्थापित हुई बाकी की दो वि. सं. १२३७ में।

हस्तिशाला में मूर्तियां स्थापन करने का उद्देश वस्तुपाल के मंदिर की प्रशस्ती में लिखा है। उसमें कहा है कि हथिनियों पर बैठी हुई जिनदर्शन के लिये आई हुई मूर्तियां दिक्पालों के समान चिरकाल तक सुशोभित रहेगी। (देखो वस्तुपाल चरित्र—लेख वि. सं. १२८७ का) इससे स्पष्ट है कि पहिले

---

* पहिले राज्य के जागीरदार, ब्राह्मण, महाजन और कायस्थों को ठक्कुर संज्ञा थी. देवास के पोरवाड क्षातीय प्रसिद्ध चौधरी-कुल के लोगों को अब भी ठा र ही कहते हैं एवं—

संवत १२४५ वै० वदी ५ भृगौ प्राग्वाट·····पृथ्वी पालात्मक ठ० जगदेव पत्नि ठ० श्रीमालदे आत्मश्रेयोर्थं श्रीसुपार्श्वनाथ प्रतिमा का० श्रीसिंह (सुरिभिः प्रतिष्ठिता)

विमल मन्दिर—देवकुलिनका की एक मूर्ति पर का लेख.

§ श्री अभिनंदनस्य। (सं० १२४५ वर्षे) वैशाख वदि ५ गुरौ पृथ्वी पालात्मज महामात्य श्रीधनपालने मातृश्री पद्मावती श्रेयोर्थं···कारिता (प्र०) श्री कोसहुद (कासहद) गच्छे श्रीसिंह सूरिभिः। (विमल का मान्दिर—देवकुलिका का लेख)

मंदिर बनवाने वाले के कुल का कोई पुरुष उस मंदिर में दर्शन करने आता उसके नामकी ऐसी मूर्तियां बनाई जाती। जैन मंदिरों के अतिरिक्त शिव और विष्णु मंदिर में भी राज-पुताने में कहीं कहीं यही प्रथा देखने में आती है।

पीछे से इस मंदिर पर भी मुसलमानोंने वि. सं. १३६८ में हस्तक्षेप किया था। उसका जीर्णोद्धार मंडोरवासी लल्ल और बीजडने वि. सं. १३७८ में किया था। हेमरथ दशरथने वि. सं. १२०२ में तथा महामात्य धनपालने वि. सं. १२४५ में पहिले इसका जीर्णोद्धार किया था।*

अनुमानतः मंदिर बनवाने के बाद शीघ्रही विमल का देहांत हुआ होना चाहिये। क्योंकि वह न तो हस्तिशाला बना सका और न अन्य देवकुलिकाओं में मूर्तियों की स्थापना कर सका। यह सब काम पीछे से हुआ है।

नेढ का वंश तो आगे चला दिखाई देता है परंतु निमल के वंशजो का कोई पता नहीं चलता। केवल अभयसिंह और उन के तीन पुत्रों के नाम अंबिका की मूर्ति पर हैं वही।

उक्त मंदिर के व्यय के संबंध में:—History and Literature of Jainism (हिस्ट्री ऍन्ड लिटरेचर ऑफ जैनीझम) में लिखा है कि:— पृष्ठ ६७

---

* स्वपितृश्रेयसे जीर्णोद्धार ऋषभ मंदिरः कारयामास तुर्ल्लल्ल वीजडौ साधु सत्तमो [मौ]. [विमल मन्दिर-जीर्णोद्धार प्रशस्ती].

" Vimalshaha a Porwad Merchant Prince of Anhilpur Pattan, purchased a part of Mt. Abu for as many silver coins as covered the ground He bought and spent 55 lacs of Rupees in levelling the side of a hill and then built a temple didicated to Ādināth which cost him 18 crores of rupees. "

भावार्थः—अणहिलपुर पट्टण का लक्ष्मी–पुत्र विमलशाह पोरवाड ने आबू के ऊपर की जमीनपर रुपे बिछाकर उतने ही मूल्य में ली। उसे साफ करने में तथा खरीद ने में ५६ लाख रुपे व्यय हुए। तदनंतर वहां आदिनाथ [ऋषभ देव का मंदिर] अठराह करोड रुपये व्यय करके बनवाया।

इस मंदिर के बनाने में इतना व्यय हुआ हो या न हुआ हो परंतु आज ऐसे कई करोड व्यय करने पर भी ऐसा मंदिर नहीं बन सकता। अस्तु।

एक शिलालेख पालिताना के सुमतिनाथ के मंदिर की माधोलाल धर्मशाला में वि. सं. १७०२ का उपलब्ध हुआ है वह विमल को नाग गोत्रीय बताता है। यह नाग गोत्र उन्हीं प्रख्यात विमल शाह का होना संभवनीय है कि जिनोंने आबूपर विमल वसही मंदिर बनवाते समय " नागराज वालीनाथ " को अपने खांडेके बल वश किया था। नागराज को वश करने के कारण इन का नाग गोत्र बन जाना असंभवनीय नहीं। इस लेख में आगे जो वंशावली दी है वह स्पष्ट

करती है कि, प्रेमजी, प्रागजी, आणंदजी विमल संतान याने उन्ही के वंशज हैं। यह लेख ❀ पहिले इसी पुस्तक में दिया गया है परंतु वहां गोत्र के महत्व से दिया है और यहां उसका और ही महत्व है। [अहमदाबाद की प्रसिद्ध पेढी के उत्पादक ये ही तो नहीं ? ?]

पोरवाड ज्ञाति में विमल शाह एक रत्न समान हो गये हैं इनका कीर्तिमय प्रकाश आज भी सारे संसार को आश्चर्यान्वित कर रहा है।

वस्तुपाल तेजपाल ।

(इस चरित्र-लेखन में पं० **शिवदत्तजी शर्मा** के "सोमेश्वर और कीर्तिकौमुदी" इस लेखका बहुत उपयोग किया है).

वस्तुपाल तेजपाल का जन्म वृतांत "वृद्ध लघुशाखा के" उत्पत्ति वर्णन में दियाजाचुका है अतएव पाठक वह जानते हो

❀ स० १७०२ वर्षे मार्गशिर सुदि ६ शुक्रे श्री अंचलगच्छाधिराज पुज्य श्रद्धारक श्री कल्याण सागर सूरिश्वराणामुपदेशेन श्री दिवबंदर वास्तव्य प्रगाग्वाट ज्ञातीय नागगात्रे मंत्री विमल संताने मं० कमल सी पुत्र मं० जीवा पुत्र मं० प्रेमजी स० प्रागजी मं० आणंदजी पुत्र केवनजी प्रमुख परिवार युतेन स्वपितृ मं० जीवाश्रेयोर्थं श्री आदिनाथ विंबंकारितं प्रतिष्ठितं चतुर्विध श्री संघेन ।

हैं। उनका जन्म वि. सं. १२६० में हुआ। उनकी माता का नाम कुमारदेवी था। इनके वंश का मूल पुरुष चंडप गुजरात में धोलका ग्राम में रहता था। इन्हीं के कुल में चोथे पुरुष अश्वराज थे और अश्वराज से माता कुमारदेवी की कुक्षी से इन दोनों भाई का जन्म हुआ। इनमें वस्तुपाल विविध गुण संपन्न था। उसका विवाह ललितादेवी से तथा तेजपाल का विवाह अनुपमादेवी के साथ हुआ था। इनके पुत्रों के नाम वंशवृक्ष में दिये हैं। तेजपाल अपने बड़े भाई का बहुत आज्ञाकारी था। "सोमेश्वर कवि" नें वस्तुपाल कवि होने के संबंधमें अपने "सूरथोत्सव" काव्य में लिखा है। अणहिलपुरपट्टण के राजा लावण्यप्रसाद को अपने मंत्री पदपर किसी सुयोग्य व्यक्तिकी स्थापना करने की इच्छा हुई तब सोमेश्वर ने ही राजा को इन बन्धु द्वयका नाम सुचित किया। राजाने इन दोनों को कहा कि, "वास्तव में जिस राजा के पास तुह्मारे जैसे गुण संपन्न कर्मचारी होते हैं वह संपत्ति के साथ साथ सुयश भी प्राप्त करता है। हमारा कई राजाओं के साथ विरोध हो रहा है, अतः हम राज्य सुधारने की इच्छा से तुम दोनों को मंत्री पद पर नियुक्त करना चाहते हैं। तुम अपनी अकुंठित बुद्धि से राज्य के ऐश्वर्य को बढाओ; और प्रजा में सुख शांति फैलाओ।

प्रत्युत्तर में विनय सहित वस्तुपाल ने कहा कि, यह तो महाराज का बडा अनुग्रह है कि हमको इस योग्य

समझा। हे देव! अब कलियुग विद्यमान है। इसमें न तो सेवकों में कार्यपरायणता है, और न स्वामियों में कृतज्ञता है। दुष्ट मंत्री राजाओं को बुरे मार्ग पर चलाते हैं, जिससे दोनों का नाश हो जाता है। यह सत्य है कि, संसार में निर्लोभी कोई नहीं, परंतु कार्य ऐसा होना चाहिये कि जिससे इस लोक में निंदा और परलोक में बाधा न हो, अतएवः—

पुरस्कृत्य न्यायं खलदमनादृत्य सहजा,
नरान्निर्जित्य श्रीपति चरितमाश्रित्य च यदि।
समुद्धर्तुं धात्रीमभिलषसि तत्सैव शिरसा,
धृतो देवा देशः स्फुटमपरथा स्वस्ती भवते॥
[॥ ३। ७७॥ की० कौ०॥]

आशयः—यदि न्याय मार्ग का अवलम्बन करते हुए दुष्टों को मुँह न लगाते हुए सहज शत्रुओं (काम क्रोधादि) से दबते हुए, धर्म परायण रहते हुए, आप अपने साम्राज्य का उद्धार करना चाहते हैं तो सेवा करने के लिये यह मस्तक आपके चरणों में उपस्थित है।

गुण ग्राहक राजा ने विवेकी वस्तुपाल के वचन उत्साह से सुने और प्रसन्न चित्त से दोनों भाइयों को राजमुद्रा देकर मंत्री पद पर नियुक्त किया। वि. सं. १२७५। थोडे समय के बाद वस्तुपाल को, "स्तंभतीर्थ" खंभात भेज दिया। वहां उसका बडा स्वागत हुवा। उसने प्रजा के सर्व कष्ट क्रमशः

दूर किये। सदाचार की वृद्धि की। वहां लुटेरों का उपद्रव न रहने से व्यापार की वृद्धि हुई। वह आर्थिक सहायता देने में उदार था। उसने हितकारी प्राचीन स्थानों तथा देवालयों का जीर्णोद्धार करवाया। नये मंदिर तालाव बनवाये, बाग लगवाए, कुवे बावडियां खुदवाई, प्याऊ लगवाए, जैन उपाश्रय खोले और एक "ब्रह्मपुरी" नामक मोहल्ला बसाया। वह सब धर्मावलंबियों को अनुकूल था। वह जैन होने पर भी वैष्णवों ओर शैवों का भी सम्मान करता था।

गुर्जर देश की सुख शांति और उन्नति दक्षिण के राजा सिंहन को क्लेशकारी हुई। उसने अचानक गुर्जर देशपर आक्रमण करना चाहा। इधर लावण्यप्रसाद वीरधवल के पास सेना कम थी तो भी वे निर्भयता पूर्वक बडे साहस के साथ शत्रु की सेना से भृगुकच्छ (भडोच) के निकट सामना करने को बढे। इसी समय मारवाड के चार राजाओं ने गुजरात पर चढाई की। इतना ही नहीं किंतु इनके मित्र गोद्रह [गोधरा] और लाट [दक्षिण गुजरात] के राजा भी मारवाड के राजाओं से मिलगए। ऐसी आपत्ति में भी राजा और मंत्री न घबराए। उन्होंने प्रथम तो सिंहन को परास्त किया तदनंतर लाट गोधरा के राजाओं से मिलकर संधि करली और फिर मारवाड वालों को मार भगाए।

इधर जब राजा इस तरह संग्राम में आ सक्ता था भाग्यवशात् वस्तुपाल की बुद्धि और वीरता की परिक्षा का

भी अवसर प्राप्त हुआ। राजा सिंधुराज के पुत्र शंख [संग्राम सिंह] ने वस्तुपाल के पास दूत द्वारा कहलाया कि, 'स्तंभपुर, हमारी कुलक्रमागत संपत्ति है इसे आप हम को लौटा दो और यदि आपका मंत्रिपद निकल जावे तो आप भी हमारे पास चले आओ। आप को भी मै वही पद दूंगा अन्यथा विरोध के लिये हमारी तलवार उपस्थित है। मंत्रीने वीराचित प्रत्युत्तर देकर दूत को लौटा दिया। फलतः राजा शंख सेना लेकर "वटकुप" [वडकुआ] सर [तालाव] के तट पर आ पहुंचा; और शनैः शनै आगे बढने लगा। वस्तुपालने भी सेना सुसज्जित की, और स्वयं घोडेपर सवार हो तथा अपने स्वामिका स्मरण कर, प्रस्थान किया। मंत्रीने बडी बुद्धि मानी तथा वीरता से नगर का रक्षण किया और आगे बढा। न्याय तथा कर्तव्य पालनार्थ वस्तुपालने तलवार खींची और दोनों सेना की अच्छी मुठ भेड हुई। वस्तुपाल का योद्धा गुहील वंशीय भुवनपालने शंख के सुभट सामंत को जब मारा तब शंखने भुवनपाल को मार गिराया। यह देखकर वस्तुपाल ने अधिक भीषण स्वरुप धारण किया। बहुत लोग मारे गए व अंत में वस्तुपाल को जीत हुई और शंख वापिस लौट गया। इस समय राजा लावण्यप्रसाद भी अपने वीर पुत्र वीर धवल को साथ लेकर शत्रुओं को परास्त कर के वापस आ चुका था। उसने वस्तुपाल का विजय सुनकर बहुत संतोष प्रकट किया।

वस्तुपाल की विजय के कारण नगर में महोत्सव हुआ। मंत्री गांव बाहर 'एकत्रवीरा' देवी के दर्शनार्थ जब गया तब हाथी घोडे तो कम थे परंतु उसके दर्शनार्थ आये हुए नगर वासि इतने थे कि मार्ग में न समाए।

अब तेजपाल के युद्ध का वर्णन भी सुन लीजिये:—

महीतट (महीकांटा) नाम के देश का घुघुल नामा राजा गोद्रेह (गोद्रा) में राज्य करता था। वह गुजरात में आते जाते व्यापारियों को लूटता था और वीरधवल की एक न मानता। इन दोनों भाइयोंने एक समय इस के पास दूत भेजा और कहलाया कि वीरधवल की आज्ञा मानी जाय; परंतु उत्तर में उसने एक काजल की डिबियां और एक जनानी धोती भेज दी। राणाने बीडा रखवा कर उसे उठवाकर घुघुल से लडने का आदेश दिया, तब दर्बार में वह बीडा वस्तुपालने ग्रहण किया। वह सेना लेकर रवाना हुआ। उस के थोडे अगुआ सिपाहियोंने जाकर घुघुल के ग्वालों को पीटा और उनकी गायें पकड लीं। घुघुल को समाचार मिलते ही वह सेना लेकर तेजपाल से संग्राम करने को उद्यत हुआ और बडे पराक्रम से मंत्री की सेना का सामना किया। अंत में द्वंद युद्ध में वह तेजपाल से हार गया और कैद करालिया गया। वह काजल की डिबियां उस के गले में बांधी गई और धोती उसे पहनाई गई। घुघुलको बडी लज्जा हुई और अपनी

दांतों से अपनी जीभ चबाकर वह मर गया। राजाने तेजपाल को बहुत पुरस्कार दिया।

एक समय चार पुरुषों ने दिल्ली से आकर वस्तुपाल को सूचना दी कि, मोजदीन सुरत्राण (मोईजुद्दीन बहरामशाह पश्चिम दिशा की ओर से सैन्य लेकर रवाना हुआ है। मंत्री ने तुरंत उन लोगों को वीरधवल के पास भेजा तब उन्होंने मंत्री ही को इस विषय का प्रबंध करने को नियत किया। इसने अर्बुद गिरी के नायक धारावर्ष से कहलाया कि जब यवन सेना दक्षिण की ओर आजावे तो वह घांटों को रोक दे। उसने वैसा ही किया। वस्तुपाल अचानक उन पर टूट पडा। यवन तोबा तोबा कर इधर उधर भागने लगे, परंतु मार्ग रुके थे। निदान वे मारे गये। वस्तुपाल ने उनके (तच्छीर्षल क्षैः शकटानिभृत्वा) लाखों मुंड छकडे में लदवाकर लाये और वीरधवल को दिखाए।

जावालीपुर [जबलपुर] में उदयसिंह नाम का चौहान राजा राज्य करता था। उसके तीन भाई बेटे थे। जिनके सामंतपाल, अनंतपाल, ओर त्रिलोकसिंह थे अपनी आजीविका न्यून होने के कारण वे वीरधवल के पास से वार्थी आए। राजा को इन वीर राजपूतों की आकृति, तेज और उद्यमशीलता पसन्द आई; परंतु जब वेतन के लिये पूछा तो उन्होंने एक लाख द्रम मांगे। इस पर राजा ने कहा कि इतने द्रव्य

में तो सैकडों योद्धा नियोजित किये जा सकते हैं, तुम उनसे अधिक क्या करोगे ? वस्तुपाल ने राजा को बहुत समझाया कि " योग्य पुरुषों की योग्यता के आगे धन कुछ नहीं है। परंतु राजा ने न माना और उन्हें बिदा किये। निदान वे लोग भद्रेश्वर [कच्छ] के राजा भीमसेन [भीमसिंह] के पास चले गये। उसने इनको रखलिये और वीरधवल से युद्ध पुकारा। इस युद्ध में वीरधवल की हार हुई, किन्तु उक्त योद्धाओं ने वीरधवल का पान खाया होने से उसे छोड दिया, और ताना मारा कि आपके सेकडों योद्धा कहां हैं ? अंत में संधी हुई ।

वस्तुपाल तेजपाल को सोमेश्वर की हर जगह सहायता हुई है। जब वस्तुपाल धोलके में ठहरा था उसकी औषध शाला से उसके एक सेवक ने कूडा फेंका जो दैव वशात् उसी मार्ग से पालकी में बैठकर जाते हुए महाराजा विमल देव के मामा "सिंह" के सिरपर जा गिरा। उनको बहुत क्रोध आया, पालकी से उतर कर वह तुरंत उस स्थान में घुस गया। उसने उस सेवक को खूब पीटा, और कहा कि तुझे दीखता नहीं था कि मैं कौन हूं ? इधर मामा अपने घर गये और बेचारा सेवक रोता चिल्लाता वस्तुपाल के निकट पहुंचा, जो उस समय भोजन करने को बैठा ही था । मंत्री एकदम उठ खडा हुआ। सेवक को सांत्वना दी; परंतु गर्व में चूर होकर राजा के मामा सिंह ने सेवक के अल्प अपराध

पर कठोर दंड दिया यह मंत्री के लिये असहनीय था। उसने अपने सिपाहियों से कहा "क्या तुममें से ऐसा कोई है जो मेरे मनोदाह को दूर कर सके ? यह सुनकर 'भूणपाल' नामका क्षत्रीय बोला कि आप आदेश दीजिये मैं सेवा करने को तैयार हूं। वस्तुपाल ने कहा कि बस आदेश यही हे कि तुम जेठुया [जेठुआ] वंशीसिंह का दाहिना हाथ काटकर ले आओ। उस वीर ने ऐसा ही किया। मंत्री ने उस हाथ को अपने मकान पर लटकवा दिया।

इस भयंकर कार्य के दुष्परिणाम से वस्तुपाल अनभिज्ञ नहीं था। उसने आश्रितों से कहा कि, हमनें बलवान से महा वैर उत्पन्न कर लिया है। अब हमारी मृत्यु में कोई संदेह नहीं है। अतः हमारे साथ रहनेवालों में से जिनको अवश्यं भावि हानि से भय हो वे पहिले से यहां से चले जावें। उधर सिंह ने भी अपना दल जमाया। और वस्तुपाल को सकुटुंब मारने का विचार कर प्रस्थान किया। राजा को भी यह समाचार विदित हो गया उसने तुरंत सोमेश्वर को बुलाया और उस की सलाह ली, सोमेश्वर वस्तुपाल के पास गया और अपनी बुद्धिमानी से उस का सिंह से साथ मेल करा दिया और राजा को भी शांत कर दिया।

ये दोनो भाई बडेही नीति-कुशल, गुणी, वीर परोपकारी और विद्वानों का सत्कार करनेवाले हुए।

सोमेश्वरादि कवियों को इनोंने भूमि आदि दान द्वारा पुष्कल आजीविका कर दी जिस की कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए सोमेश्वरने कहा है:—

' सूत्रे वृत्ति कृतापूर्वं दुर्ग सिंहेन धीयता।
विसुत्रेतु कृता तेषां वस्तुपालेन मंत्रिणा "

वस्तुपाल सोमेश्वर को बहुत आदर करता था:—

एक समय वस्तुपाल धोलका से स्तंभपुर गया। जब वह वहां पहुंचा तो उस समय कुछ घोडे नावोंमें से आये हुए थे। उसने उस समय उन घोडों की ओर तथा समुद्र की ओर देखकर कहा:—

प्रावृट काले पयो राशिः कथं गर्जित वर्जितः ?

अर्थात्-वर्षा ऋतु में यह समुद्र बिना गर्जना के क्यों हैं ? सोमेश्वरने उत्तर दिया:—

" अतः सुप्त जगन्नाथ निद्राभंग भया दिव "

वस्तुपालये प्रसन्न होकर उसी समय वे अमुल्य १६ घोडे सोमेश्वर को भेट दिये ।

एक समय कइएक कवि बैठे थे और परस्परमें मनोहर संभाषण कर रहेथे कि उस समय वस्तुपालने एक समस्या दी।

"काकः किंवा क्रमेलकः" अर्थात्-कौवा या ऊंट। इन असंगत शब्दों से सोमेश्वरजीने तुरंत कविता कर सुनाई—

"येनागच्छ मन्माख्यातो येनानी तश्चमेपतिः!
प्रथमं साक्षि! कः पूज्यः काकः किंवा क्रमेलकः॥

इस पर मंत्रिने १६ सहस्र द्रम भेट किये। वस्तुपाल स्वयं विद्वान तथा श्रीमान होने के कारण उसने विद्वानों को बहुत दान दिया है। उन में से पूर्वोक्त कुछ नमुने पाठकों को दिखाए गए हैं।

राजा वीरधवल के पश्चात् उनका कनिष्ट पुत्र विमल-सिंहा सनासीन हुआ तब वस्तुपाल के अधिकार कम करदिये गये इतना ही नहीं किन्तु एक मुंह लगे समराक नाम के प्रतिहार के कहने पर राजा मंत्री से बलात्कार धन मांगने लगा। उन्होंने कहा कि "हमारे पास जो धन था वह शत्रुंजय आदि तीर्थ स्थानों पर लगा चुके और अब कुछ नहीं रहा है" वस्तुपाल ने किसी समय समराक को दंड दिया था उसने अपने अनुकूल राजा को ऐसा सिखा पढा दिया था कि राजा ने वस्तुपाल का कहा न माना और कहने लगा कि यदि तुम्हारे पास धन नहीं है तो तुम "दिव्य" हो। मंत्री ने राजा से पूछा "आप कैसा दिव्य चाहते हैं"? "उसने एक घडे में सांप रखवाकर सामने किया और कहा कि "यह दिव्य है। यदि तुम सच्चे हो तो इसमें हाथ डालो, सांप नहीं

काटेगा"। बडी कठिण समस्या आ पडी। राजा यमराज से भी भंयकर हो गया। उस समय राजा को कौन समझावे किन्तु सोमेश्वरने एक अन्योक्ति द्वारा राजा को उपदेश देकर अनर्थ से बचाया।

मासान्मांसल पाटला परिमल व्यालोल रोलम्बतः
प्राप्य प्रौढि मिमां समीर ! महतीं हन्त त्वया किं कृतम्।
सूर्याचंद्र मसौ निरस्तत मसौ दूरं तिरस्कृत्य य--
त्याद स्पर्श सहं विहायास रजः स्थाने तयोःस्थापतम्॥

अर्थात्—हे वायु ! महिनो महीने तक गुलाब की सुगंधि में घूमने के बाद अब इस प्रवृद्ध अवस्था को प्राप्त होकर तूने यह क्या अनर्थ करडाला ! अरे, जिन सूर्य और चंद्रमाने अंधःकार को दूर किया उन्हीं का नरादर करके आज तू आकाश में उनके स्थान पर पैरों के स्पर्श करने वाली धूलि को स्थापित कर रहा है।

संघ यात्रा।

उपर कहे अनुसार वस्तुपाल तेजपाल ने धर्ममार्ग में सच में ही अगणित द्रव्य का व्यय किया है। मंत्री ने तीर्थ यात्रा के वास्ते संघ निकाला अनेक साथी, सेवक, हाथी, बैल रथ, गाडी, आवश्यक कुल वस्तुओं को लेकर शुभ मुहूर्त पर उनोंने यात्रा के लिये प्रस्थान किया। यात्रा में वस्तुपाल का प्रण था कि सब ने भोजन करने के पश्चात् सोना, और औरों

के पहिले निद्रा से उठ बैठना। यह यात्रियों का संघ जिन नगरों में होकर निकला वहां के आभीशों ने उस का पूर्ण सत्कार किया। मार्ग में सब लोक संप्रदाय के उचित गीत गाते जाते और जहां कोई जिनेश्वरों का बिम्ब और श्वतांबरों के समूह मिलते वहां उनका अर्चन कर वह आगे बढता। इस तरह चलते चलते वह संघ सहित शत्रुंजय पर्वत के शिखर पर पहुंचा। वहां पूजाएं की, और श्री नेमिनाथ तथा श्री पार्श्वनाथ के दो विशाल मंदिर बनवाए। पिछले मंदिर के मंडप में अपने पूर्वज तथा सुहृदों की अश्वारोहित मूर्तियां स्थापित की वहां एक शीतल जलका सरोवर भी बनवाया। तदनंतर वहां से चलकर वह रैवतक (गिरनार) पहुंचा। वहां पर श्री नेमिनाथ के मंदिर में जाकर भावपूर्ण पूजा की। यहां से श्री जिनेन्द्र चरणारविंद को प्रमाणकर अर्थी-जनों को दान देकर अपने नगर को लौटकर उन्हें बिदा किया। इस संघ में सात लाख मनुष्य साथ होने का वस्तुपाल प्रबंध में उल्लेख है।

मंदिरादिः—

इन दोनों भाईयों ने दक्षिण में श्री शैल, पश्चिम में प्रभास, उत्तर में केदार और पूर्व में काशीतक इतने धर्म स्थान बनवाये कि जिनका गिनना कठिन है। शत्रुंजय गिरनार तथा आबू पर तो इन्होंने अलौकिक मंदिर। बनवाए इनमें

क्रमशः १८ करोड नव्वे लाख, बारह करोड अस्सी लाख और बारह करोड तिरपन लाख का व्यय हुआ। धर्म-कार्य में इनका कुल तीन अरब चौदह लाख रुपिया लगा। इनके बनवाये उत्तम मंदिरों में से केवल आबू के 'लूणवसिंह' नाम के मंदिर का वर्णन पाठकों के लिये दिया जाता है।

यह मंदिर वस्तुपाल के छोटे भाई तेजपालने अपना पुत्र लूणसिंह (लावण्यसिंह) तथा अपनी स्त्री अनुपम देवी के कल्याण के वास्ते कई करोड रुपये में वि. सं. १२८७ (इ. स.१२३१) में बनवाया। (यहां के शिला लेख में वि. सं. १२८७ है परंतु तीर्थ कल्प में १२८८ लिखा है) यह मंदिर शिल्पकला का एक नमुना है। विमलशाह के मंदिर की यह मंदिर कुछ समता करता है। भारतीय शिल्प संबंधी विषयों के लेखक मि. फर्ग्यूसन लिखते हैं कि:—

"इस मंदिर में जो कि संगमर्मर का बना है अत्यंत परिश्रम करने वाले हिंदुओं की टांकी से समान बारीकी के साथ ऐसी मनोहर आकृतियां बनाई गई हैं कि उनकी नकल कागज पर बनाने को. कितने ही श्रम तथा समय में भी मैं समर्थ नहीं हो सकता। (पि. इ. आफ. ए. आ. इन हिंदुस्थान).

इस मंदिर के गुंबज की कारागरी के संबंध में कर्नल टॉड साहेबने लिखा है कि:—

"इसका चित्र तयार करने में लेखनी थक जाती है और अत्यंत परिश्रमी चित्रकार की कलम को भी महान परिश्रम उठाना पडेगा।"

मि. फॉर्बसने अपनी "रासमाला" में विमलशाह तथा वस्तुपाल तेजपाल के मंदिरों के संबंध में लिखा है कि:—

"इन मंदिरोंकी खुदाईके काम में स्वाभाविक निर्जीव पदार्थों के चित्र बने हैं इतनाही नहीं किन्तु सांसारिक जीवन के दृश्य, व्यापार तथा नौका-शास्त्र के चित्र तथा रण संग्राम के चित्र भी खुदे हैं।"

इसकी छत में जैन–धर्म की अनेक कथाओं के चित्र हैं। इसमें मुख्य मंदिर (गंभारा), आगे गुंबजदार सभा-मंडप, आसपास के छोटे छोटे जिनालय तथा पीछे हस्तीशाला अत्यंत मनोहर है। मंदिर में मुख्य मुर्ति नेमिनाथ भगवान की है। यहां पर दो बडे बडे शिला लेख हैं एक धोलका के राणा बीरधवल के पुरोहित तथा "कीर्ति-कौमुदी और सुरथोत्सव" काव्यों के कर्ता कवि सोमेश्वर का रचा हुआ है। इसमें वस्तुपाल तेजपाल के वंश का वर्णन, अर्णोराज से लगाकर वीरधवल तक की वघेल राजाओं की नामावली आबू तथा सिरोही के राजाओं का वृत्तांत इस मंदिर की प्रशंसा तथा हस्तिशाला का वर्णन आदि है। यह ७४ श्लोकों का एक छोटासा सुंदर काव्य है। इसी के दुसरे शिला लेख में जो गद्य में ही है; विशेष कर इस मंदिर के वार्षिकोत्सव आदि की जो व्यवस्था की गई थी उसका वर्णन है। इसमें आबू पर के तथा नीचे के अनेक गांवों के नाम लिखे गये हैं, जहां के महाजनोंने प्रतिवर्ष नियत दिनों पर यह उत्सव करना स्वीकार

किया था। इन लेखों के अतिरिक्त छोटे छोटे जिनालयों में से बहुधा प्रत्येक द्वार पर भी सुंदर लेख खुदे हुए हैं। इस मंदिर को बनवाकर तेजपालने अपना नाम अमर किया इतनाही नहीं किन्तु उसने अपने कुटुंब के अनेक स्त्री-पुरुषों के नाम अमर कर दिये। इस मंदिर में जो छोटे छोटे बावन जिनालय है उनके द्वारपर उसने अपने संबंधियों के नाम के सुंदर लेख खुदवा दिये हैं। प्रत्येक छोटा जिनालय उनमें से किसी न के निमित्त बनवाया गया था। मुख्य मंदिर के द्वार के दोनों तरफ बडी कारागिरी से बने दो ताक हैं। इनमें से एक वस्तुपाल की स्त्रीने और एक तेजपाल की स्त्रीने अपने अपने निजी द्रव्य से बनवाया था ऐसा आचार्य श्री शांतिविजयजी "जैन तीर्थ गाईड" में लिखते हैं परंतु वह ठीक नहीं है। वास्तव में ये दोनों ताक वस्तुपालने अपनी दुसरी स्त्री सुहडा देवी के श्रेय के निमित्त बनवाये थे। सुहडा देवी पट्टन के रहने वाले मोढ जाति के महाजन ठाकुर जाल्हण के पुत्र ठकुर आसाकी पुत्री थी ऐसा उनपर खुदे हुए लेखों से ज्ञात होता है। (यह लेख इसी पुस्तक में दुसरी जगह दिया गया है)।

इस मंदिर की हस्तिशाला में बहुत ही सुंदर संगमरमर की दस हथनियां हैं, जिनपर चंडप, चंडप्रसाद, सोमसिंह, अश्वराज लुणिग, मल्लदेव, वस्तुपाल, तेजपाल, जैत्रसिंह और लावण्यसिंह (लुणसिंह) की बैठी मूर्तियां थी परंतु अब

उन पर एक भी मुर्ति नहीं रही। इन हथनियों के पीछे पूर्व की दीवार में दस ताक बने हैं जिनमें इन्हीं दस पुरुषों की स्त्रियों सहित पत्थर की खडी मूर्तियां बनी हैं।* इन सब के हाथों में पुष्प मालाएं हैं। वस्तुपाल के सिरपर पाषाण का छत्र भी है। प्रत्येक पुरुष तथा स्त्री का नाम मूर्तिके नीचे खुदा हुआ है। अपने कुटुंब भर का इस प्रकार का स्मारक बनाने का काम यहां के किसी दुसरे पुरुषने नहीं किया। यह मंदिर शोभनदेव नाम के शिल्पने बनाया था। मुसलमानोंने इसको भी तोडाया [अनुमानतः वि. सं. १३६६ (इ. स. १३०९) में अल्लाउदीन खिलजीनें जालोर के चौहान राजा कान्हड देव पर चढाई की थी तब] इस का जीर्णोद्धार पेथड [पीडथ] नें करवाया था। जीर्णोद्धार का लेख एक स्तंभपर खुदा है। परंतु इस में संवत नहीं दिया।

इस मंदिर की पूजा आदि के लिये इसने बारठ प्रगणें का डवाणी गांव दिया जो अब डमाणो नामसे प्रसिद्ध है। वहां से मिले हुए वि. सं. १२९६ श्रावण सु. ५ के लेखमें उक्त मंदिर तेजपाल और उनकी स्त्री अनुपमा देवी के नामों का उल्लेख है।

---

* पहिले ताक में चार मूर्तियां खडी हैं जिनमें—
१ आचार्य उदयसेन की २ आचार्य विजयसेन की
३ चंडप की और ४ चंडपकी स्त्री चांपल देवी की है।
उदयसेन विजयसेन का शिष्य था. ये नागेंद्र गच्छ के साधु और वस्तुपाल के कुलगुरु थे. उक्त मंदिर की प्रतिष्ठा विजयसेन ने ही कराई थी।

वस्तुपाल ऐसा श्रीमान तथा सत्ताधारी था तो भी वह:—

एकाहारी भूमि संस्ताएकारी,
पद्भ्यांचारि शुद्ध सम्यकृत्व धारी.
यात्राकाले सर्वसच्चितहारी,
पुण्यात्मा स्याद ब्रह्मचारी विने कि.

अर्थात्-एक समय भोजन करनेवाला, जमीनपर बिस्तर डालकर सोनेवाला, पैदल चलनेवाला, शुद्ध सदाचारी यात्रा के समय जैन साधु के अनुसार अहार, त्याग, ब्रह्मचर्य तथा विवेक से चलनेवाला था।

वस्तुपाल को निम्नोक्त पद्वियां थी:—

" १ प्राग्वाट ज्ञाति अलंकार, २ सरस्वती कंठा भरण ३ सचिव चूडामणि, ४ कूर्चाल सरस्वती, ५ धर्म पुत्र, ६ लघुभोज राज, ७ खंडेरा, ८ दातार चक्रवर्ती, ९ बुद्धि अभय कुमार, १० ऋषि कंदर्प, ११ चतुरिमा चाणाक्य, १२ ज्ञाति वाराह, १३ ज्ञाति गोवाल, १४ सैयद वंशक्षय काल, १५ सांखलाराय [शंख] मान मदन, १६ मज्जाजैन, १७ गंभीर १८ धीर, १९ उदार, २० निर्विकार, २१ उत्तमजन माननीय २२ सर्व जन श्लाघनीय, २३ शांत, २४ ऋषि पुत्र २५ पर नारी सहोदर। (श्रीमालिओंना ज्ञातिभेद पृ. ११६)

अंत में वि. सं. १२९८ में वस्तुपाल बीमार होगया। उसने राजा से अंतिम बिदा मांगी व शत्रुंजय को प्रस्तान किया

परंतु वहांतक न पहुंच सका, मार्गमें ही उसका शरिरांत होगया। इनके तीन वर्ष पश्चात् तेजपाल भी सुरपुर को सिधारे।

पोरवाड ज्ञाति तो ठीक ही किंतु सारा जैनसमाज इनका ऋणि है। भारत की शिल्प कला के साथ साथ इनका नाम भी गौरव पूर्ण अमरत्व पाया है।

हिस्ट्री एन्ड लिटरेचर ऑफ जैनिझम पृष्ट ७४ में लिखा है कि:—

In his [Vidyanand] time lived Vastupal and Tejpal brother minister of the king of Gujrat [Virdhawal] in 1231 A. D. They errected on Mt. Abu a temple near that of Vimalshah in the front wall of which there are nitches ornamented with elegant and exquisite designes unequalled in India. They were great warriors and helped their king in his wars with neighbouring princes. They led large numbers of Jains on pilgrimage to varions holi places & raised Jainism to a state of splandour only next to that time of Kumarpal

अर्थात—विद्यानंद के समय में गुजरात के राजा वीर-धवल के मंत्री बंधुव्दय तेजपाल व्रस्तुपाल हुए। ई. स १२३१ में इनोंने आबूपर विमलशाह के मंदिर के सन्निध मंदिर

बनवाया उसकी सामने की दीवाल में जो दो देव कुलिकाएं हैं उनकी कारागिरी और सुंदरता की बराबरी करने वाला नमुना सारे भारत भर में नहीं है। वे (वस्तुपाल तेजपाल) अच्छे योद्धा थे और निकटवर्ति राजाओं के साथ के युद्धों में उन्होंने अपने राजा को बहुत सहायता दी। उनोंने तीर्थ यात्रा के संघ निकाले थे और जैन धर्म की उच्चतम प्रभावना करने में कुमारपाल से उनका दुसरा ही नंबर था।

वस्तुपाल तेजपाल के कुछ महत्वपूर्ण शिलालेख

उपर कहे अनुसार शिवमंदिर के शिलालेख।

नगर—मारवाड

श्री भीडभंजन महादेव के मंदिर में

सूर्य के आसपास की दोनों ओर की स्त्री मूर्तियों

की चरण चौकीपर

१ दाहिने तरफः—

१ ॥ ॐ ॥ संवत १२९२ वर्षे आषाढ़ सुदि ७ रवौ श्री नारद मुनि विनिवेशिते श्री नगरवर महास्थाने सं. ९०

२।८२ वर्षे अति वर्षाकाल वशादति पुराण तयाच आकस्मिक श्री जयादित्य देवीय महा प्रसाद विनिष्ठायां ।

३। श्रीराजुल देवी मूर्ते पश्चात् श्रीमत् पतन वास्तव्य प्राग्वाट ठ. चंडमात्मज ठ. श्री चंडप्रसादांगज ठ. श्री सो —।

४।– मतनुज ठ. श्री आसाराज नंदनेन ठ. श्री कुमार देवी कुक्षी संभूतेन महामात्य श्री वस्तुपालेन स्वभार्याम – ।

५।–हं श्री स—पुण्यार्थमिहैव श्री जयादित्य देवपत्या श्री राजल देल्यां मूतिरियं कारिता ॥ शुभमस्तु ॥

२ बाये तरफः—

१॥ ॐ ॥ संवत १२९२ आषाड सुदि ७ रवौ श्री नारद मुनि विनवेशीते श्री नगरवर महास्थाने सं. ९०८२ वर्षे अ–

२।–तिवर्षाकाल वशादति पुराणं तयाच आकस्मिक श्री जयादित्या देवीय महाप्रसाद पत्तन विनिष्ठांया श्री रत्नादेवी मूर्तो– (तौ)

३। पश्चात श्रीमत वास्तव्य पत्तन प्राग्वाट ठ. श्री चंड-पात्मज ठ. श्री चंडप्रासादांगज ठ. श्री सोमतनुज ठ. श्री आसाराजनन्द –।

४।–नेन ठ. श्री कुमार देवी कुक्षि संभूतेन महामात्य श्री वस्तुपालेन स्वभार्या मप्याः ठ. कन्हड पुत्र्याः ठ. संपूत्क-क्षिभवा–।

५।–याः महं श्री ललिता देव्या पुण्यार्थमिहैव श्री जयादित्य देवपत्या श्री रत्नादेवी मूर्तिरियं कारिता ॥ शुभमस्तु ॥ ६ ॥

उक्त दोनों लेख की प्रथम पांक्ति के अंत में "सं. ९०८२ वर्षे" लिखा है परंतु यह संवत कौनसा है इसका ठीक ठीक पता अभी चलता नहीं। इसी अनुसार गाणेसर गुजरात की जैन मंदिर की निम्नोक्त प्रशस्ति में भी आरंभ में ॥ ९० ॥ लिखा है वह समझ में नहीं आता। यह सं. १८०२ होना संभवनीय है।

३

पेथडशाह तथा मुंजाल।

प्रसिद्ध प्राग्वाट वंशीय चंडसिंह के सात पुत्रों में से सबसे बडे पेथड और पांचवे मुंजाल थे। ये पाटण के राजा कर्णसिंह के समय हुए। पेथडशाह नें शत्रुंजय तथा गिरनार की यात्रा के संघ निकाले थे। पेथड के संबंध में विमल प्रबंध में लिखा है कि:—

"वाहड जाहड पेथड तणी कलियुगी कीरति वरतई घणी"

मुंजाल इनसे भी प्रभावशाली थे। वे कर्णदेव के मंत्री थे। उन्हें महामात्य की पदवी थी। इनके समय पाटण में ये ही कर्ता हर्ता थे और वहां जैनों की बडी चलती थी। राजा कर्णदेव की पट्टराणी मिलनदेवी, महाजन जैन वंशीय थी। और इन्हीं के अनुरोध से उसका कर्णदेव के साथ विवाह हुआ था। रणिवास तथा राज्य में इनका हिलाया पत्ता हिलता था। मुंजाल की कीर्ति दूर दूर तक फैली हुई

थी। उनके नाम की हुंडी युनान तथा मिसर में भी सिकरती थी। (पाटणनी प्रभात से)

पेथडशाह ने संडेरपुर में जो मंदिर बनवाया है उसकी निम्नोक्त प्रशस्ति है:—

" जिणदास महत्तर " इतितेन रचिता चूर्णिरियम्
सम्यक् तथाऽऽम्नाय......भावाद त्रोक्तं यदुत्सूत्रम्।
मतिमान्द्याद्वा किंचितच्छोध्यं श्रुतधरैः कृपाकलितैः ॥ १ ॥
श्री शीलभद्र सूरिणां शिष्यः श्रीचद्र सूरिभिः।
विंश को देश के व्याख्या दृब्धा स्वपर हेतवे ॥ २ ॥
वेदाश्वरुद्रयुक्ते ११७४ विक्रम संवत्सरेतु मृगशीर्षे।
माघ सिद्धा दशायां समापितोऽयं रवौवारे ॥ ३ ॥
इति श्री निशीथ चूर्णिविंशको देशक व्याख्या समाप्ता ॥
ग्रंथा ग्रंथ संख्या २८००० ॥

स्विस्ति श्री प्रभु वर्धमान भगवत्प्रासाद विभाजिते। श्री संडेरपुरे सुरालय समे प्राग्वाट वंशोत्तमः। आभूर्भूरियशा अभूत सुमिति भूर्भूमि प्रभु–प्राचित–ऽस्त ज्ञातोऽन्वय पद्मभा-सुररविः श्रेष्ठी महानासडः ॥ १ ॥ तन्मुख्यो मोख नामा नय विनय निधि सूनुरासित्तदीय.........स्तद्भ्राता वर्द्धमानः समजनि जनतासु स्व सोजन्यमानः अन्यूनाऽन्याय मार्गोऽव नयन रसिक स्तत्सतश्चणुसिंहः। सत्पाऽऽसंस्तत्तनूजाः प्रथित गुण गणाः पेथडस्तेषुपूर्वः ॥ २ ॥ नरसिंह रत्नसिंहौ चतुर्थ मल्लस्ततस्तु मुंजालः। विक्रमसिंहो धर्मण इत्येतेऽस्यानुजाः क्रमतः ॥३॥ सडेर केऽणहिल पाटक पत्तनस्याऽऽसन्ने यएव निरमापयदुच्च चैत्यं। स्व स्वैः स्वकीय कुल दैवत वीर सेव्यश –(?) क्षैत्राधिराज सतताश्रित सन्निधानम् ॥ ४ ॥ वासावनीतेन समंच जाते कलौ कुलौ स्थापय देव हेतोः।

बीजापुरं क्षत्रिय मुख्य वीज–सौहर्दतो लोक कराद्र-कारी (?) ॥५॥ अत्रारीरी मय ज्ञात नदन प्रतिमाविन्तम् । यश्चैत्यं कारयामास लसत्तोरण संजितम् ॥ ६ ॥ यो कारय त्सचिव पुंगव वस्तुपाल–निर्मापितेऽर्बुदगिर ॥ ❀ ❀ ❀

उक्त प्रशस्ति से वंशावलि ।

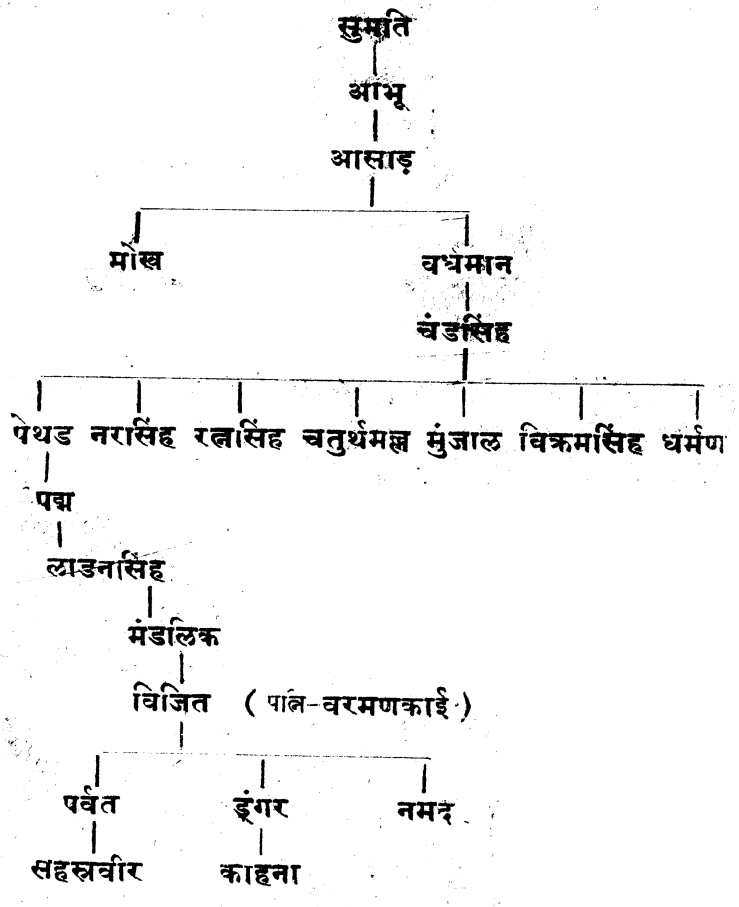

४

धरणासा रत्नासा ।

प्राग्वाट वंश में संघवी सानर [मांगण] के सुत सं० कुरपाल भार्या कामल दे के पुत्र प्रसिद्ध धरणा और रत्ना हुए। इनोंने लाखो रुपये व्ययकर के संघ निकाले शत्रुंजयादिकी तीर्थ यात्रा की। शत्रुंजय, अजाहरी, पींडर वाट सालेरा आदि स्थानों में मंदिर जैन विहार आदि नये भी बनबाये और कईयों का जिर्णोद्धार कराया। इनोंका बनवाया राणपुर (मारवाड) का चतुर्मुख विहार अत्यंत प्रेक्षणीय है। इसकी चित्ताकर्षक तथा आश्चर्य कारक मांड़णी इसके गुंबच की भव्यता तथा प्रमाण युक्तता प्रेक्षक को मंत्र मुग्ध कर देती है। आज भी कई पाश्चिमात्य कारागीर एन्जिनियर उसे देख कर धन्य धन्य कहते हैं। इसके बनाने में भी लगभग १५ करोड के व्यय हुआ है। राणपुर की प्रशस्ती में इनके वंश लिखा है कि:—

" विनय विवेक धेर्य दार्य शुभकर्म निर्मल नीलाद्यद्भुत गुण मणिमया भरण भासुर गात्रेण श्रीमद हम्मद सुरत्राण दत्त फुरमाण साधु श्री गुणराज संघपति साहचर्य कारि देवालया डंमर पुरासर श्री शत्रुंजयादि तीर्थ यात्रेण। + + + ॥ (राणपुर प्रशस्ति)।

राणपुर का विहार संवत १४९६ में बंधवाया गया ! उस समय गुहिल वंशी राणा कुंभकर्ण मेवाड के राणा थे। गुहिल वंश में ये ४१ वें राणा थे।

राणपुर प्रशस्ति क अनुसार धरणासा रत्नासा की वंशावली।

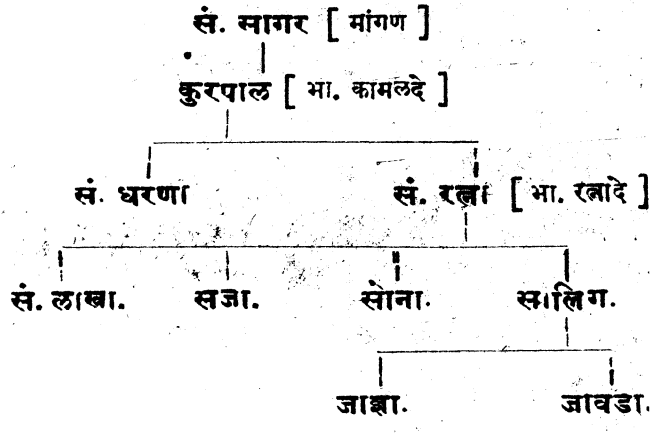

५

पोसिना का श्रेष्ठि उहड का वंश।

इस वंश में उहड ने पांदपरा ग्राम में [उंदिर] वसहि का चैत्य था। श्री महावीर की प्रतिमा बनाई। इन के पुत्र ब्रह्मदेव, शरणदेव में से पहिलेने वि. सं. १३०५ में नेमिनाथ

के मंदिर का रंग-मंडप दाढा धर बनाया। दूसरे ने संप्तविंशत तीर्थ किये सं १३१० में। इन के पुत्रोंने १३३८ संवत में वासुपुज्य की देवकुलिका बनवाई. और सं. १३४५ में श्री संमेत शिखरजी की मुख्य प्रातष्ठा कराई। एवं इस वंश के चार पीढी तक सभी वंशजोंने ऐसे धर्म कार्य किये कि जिनका स्मरण उक्त स्मारक उपस्थित हैं वहांतक संसार को रहेगा।

इनका—शिलालेखं।

[पोसीना—भरुच—भेरव मूर्ति के नीचे]

१ प्राग्वाट वंशे श्रे० उहड येन श्री जिन. २। भद्रसूरि सदुपदेशेन पादपरागामे उं- ३ दिर वसहि का चैत्यं श्रीमहावीर प्रतिमा ४। युतं कारितं। तत्पुत्रौ ब्रह्मदेव शरण दे- ५ कै ब्रह्म देवेन सं. १३०५ अत्रैव श्री ने ६। मि मंदिर रंग मंडप दाढा धरः कारितः ७। श्री रत्नप्रभ सूरि सदुपदेशेन तदनुज श्रे० ८। शरणदेव भार्या सुहव देवि तत्पुत्रः श्रे०

९ वीरचंद्र पासड। आंबड रावण। यै श्री पर-
१० मानंद सूरिणा मुपदेशेन सप्तविंशत तीर्थ का-
११ रितं॥ सं. १३१० वर्षे। वीरचंद्र भार्या रुखमिणी-
१२ पुत्र पूना भार्या साहग पुत्र लूणां झांझण आं-
१३ बड पुत्र बीजा खेता। रावण भार्या हीरु पुत्र वो-
१४ डा भार्या कामल पुत्र कडुआ॥ द्वि० जयता भार्या मूं-
१५ छा पुत्र देवपाल। कुमरपाल। तृ० अरिसिंह भा०-

१६ गडर देवी प्रभृति कुटुम्ब समन्वितैः श्री परमा-
१७ नंद सूरिणामुपेदेशन सं. १३३८ श्री वासुपूज्य-
१८ देव कुलिका । सं १३४५ श्री समेत शिखर-
१९ तीर्थं मुख्य प्रतिष्ठा महा तीर्थ यात्रां विधाप्या-
२० त्म जन्म एवं पुण्य परंपरया सफली कृतः
२१ तदद्यापि पोसिना ग्रामे श्री संघेन पूज्यमान-
२२ मस्ति ॥ शुबभस्तु श्री श्रमण संघ प्रसादतः ॥

६

उज्जयनी के बीसा पोरवाड ।

आजसे-लगभग ३०० वर्ष पूर्व से ५० वर्ष पूर्व तक उज्जयनीके पोरवाडों के पारसी तथा गुजराती भाषा के लिखे कवाले जो उपलब्ध हुए हैं उन पर से तथा वृद्ध सजातियों के स्वनिरिक्षित वर्णन पर से मानने में कोई हरकत नहीं कि आजसे पचास साठ वर्ष पूर्व तक वहां के पौरवालों की बहुत अच्छी स्थिति थी। उज्जयनी में आज जहां [कार्तिक चौकमें] भोई लोगों का निवास स्थान हैं वहां पहिले सब पोरवाड रहते थे। राजा की ओर से उन को बहुत सन्मान मिलता था, एवं वे श्रीमान तथा राजमान्य भी थे। उनमें सेकई लोगों को

राज की ओर से म्याने की सवारी का सन्मान मिला था। उस समय पोरवाड महिलाएं प्रायः बहुत कम बाहर निकलती थीं, किन्तु कहा जाता है कि, जब कोई पर्व त्योहार वा उत्सव के समय वे इकट्ठी होकर निकलतीं तो उन के पीछे गांव के सैकडों दरिद्री चलते जाते। वे इसी आशा से कि पोरवाड महिलाओं के वस्त्रों में लगे हुए मोती वा शरीर पर धारण किये अलंकारों में से कुछ गिरे तो मिल जावे। क्यों कि उस समय पोरवाड इतने श्रीमान थे कि उन के घर की स्त्रियां अपने लेहेंगे लुगडों में सच्चे मोती की झालरें लगाती। अलंकार की तो बात ही निराली. कार्तिक चौक के अतिरिक्त खारा कुआ तथा लुणसंडी में भी पोरवाडों का निवास था। खारे कुए पर धनाढ्य श्रेष्ठी माधवसिंह खूबचंद अफीमिया की हवेली [मकान] अब भी है परंतु शोक है कि वह अब एक बोहरा ज्ञातिय मुसलमान की स्थावर सम्पत्ति है। अफीमिया अति सम्पत्तिमान थे। कहा जाता है उन के केवल पूजा के सुवर्ण उपकरण सवा लाख से अधिक मूल्य के थे। उन की संपत्ति का तोल करने को पच्चीस दल्लालों को छे मास लगते तब होता था। सुना है कि एक समय कोई राजवंश की सन्मान्य महिला श्रेष्ठजी की हवेली देखने आई तब श्रेष्ठजी की भार्या की ओर से उन का योग्य सन्मान न होनेसे वे रुष्ट होकर चली गई। श्रेष्ठजी के पश्चात् उनकी अपार संपत्ती का अपहरण हुआ। उन के दान किये जैन मंदिर तथा उपाश्रय

अब भी उज्जैन में उन्हीं हवेलीके सान्निध बने हैं। हवेली सचमुच देखने योग्य गृह है।

उपलब्ध कवालों में से एक गुजराती भाषाका वि. सं. १७९१ का तथा फारसी भाषा का फसली सन. ११२१ [वि. सं. १७६०] का, उज्जैन के रुपचंद बिन हरीचंद बनिया पोरवाड इस नाम का मिला है। अर्थात् आजसे लगभग २२६ वर्ष से पहिले एवं १७६० से पहिले से पोरवाड लोक मालवा तथा उज्जैन में रहते थे। उस समय उनकी गुजराती भाषा थी अतएव उनका गुजरात से आना बहुत संभवनीय है। इन कवालों के अवलोकन से यह भी ज्ञात होता है कि पहिले सौभाग्यवति महिलाएं अपने हस्ताक्षर की जगह 卐 स्वस्तिक का चिन्ह बनाया करती थी।

परंतु हा !! आज से दस बारह वर्ष पूर्व उज्जैन में केवल तीन चार घर वीसा पोरवाडों के तथा कुछ अधिक जांगडा पोरवाडों के रह गये थे। अब फिर वहां व्यापार निमित्त रतलाम शाजापुर आदि स्थानों से कुछ पोरवाड आ बसे हैं और अब बीसा पोरवाडों की लगभग ९ के ग्रह संख्या वहां है।

७

चौधरी-कुल देवास ।

मालवा प्रांत के बीसा पोरवाडों में चौधरी कुल की बराबरी करने वाला कोई दूसरा कुल पहिले न था और आज भी नहीं है। आज की अवनत दशा में भी इस कुल के लगभग सतरह घर देवास में हैं।

पोरवाडों का संबंध पौरव कुल से है यह पाठक पहिले इसी पुस्तक में पढ चुके हैं। यही संबंध इस घराणे में और पुरुकुल के प्रसिद्ध पवार घराणे में आज भी प्रचलित है। इन दोनों घराणों का सेव्य सेवक-भाव आज कई शताब्दियां देख चुकी हैं। दोनों कुल सुख दुःख के समय एक दूसरे को साथ देते आये हैं। पेशवा के समय जब पवार सरकार हरदा हंडिया प्रांत के सूबे थे तब मालवा प्रांत का वसूली का काम इसी घराणे के सुपुर्द था और इस वसूली के कार्य के उपलक्ष्य में इन्हें वसूली का चौथा हिस्सा स्वनिर्वाहार्थ मिलता था। उस समय ऐसे उपन्न को चौथाई कहते थे और इसी लिये इस घराणे को "चौथधारी" कहा जाता था। इस का अब अपभ्रंश "चौधरी" हो गया है।

इन लोगों के पास जो कागद पत्र हैं उनमें एक पत्र ई. सन १७५१–५२ का प्राप्त हुआ है, वह बताता है कि इस

घराणे का पवार घराणे से संबंध लगभग १७४ वर्ष से पूर्व का है। यहां के जैन मंदिर में पांच छे मूर्तियोंपर जो लेख खुदे हुए हैं वे बताते हैं कि वे इसी कुल के पूर्वजों की बनाई हुई हैं। उन सब पर वि. सं. १६८३ महा सुदि १३ रवि दिन लिखा है। एवं यह कुल इस नगर में वि. सं. १६८३ से पूर्व याने ३०३ वर्ष पूर्व से इसी नगर में निवास कर रहा है। पाठकों के अवलोकनार्थ एक दो लेख नीचे दिये जाते हैं।

१

श्री पार्श्वनाथ मंदिर देवास—चक्रेश्वरी के पास की श्वेत मूर्तिपर।

सं० १६८३ वर्ष महासुदि (१३) रवि दिन; मालव देश देवास नगर पोरवाड ज्ञातिय चौधरी पूजायां मूर्ति दी. सू. द्विजय वद भा० सजन सू० कीमतराम भाई जसादास केशवदास भा० केशर दे सू० रामजी कानजी धनजी मनुजी जिनं.....।

२

सं० १३८३ महासुदि (१३) रवि दिने मालव देशे पोरवाड ज्ञाति सं० मेघजी भा० हेमासोमा सु० कपूरचंदजी तांका सु० गंभीरचंद सु० पेमचंद भा० परघा सं० देवचंद

भा० कस्तूरा सु० हरजी भा० सरसती सं० हीराचंद भा० वीरा सु० हंसराज बिंबं कारापितं सूरिश्वर......... ..।

उक्त लेखों से ज्ञात होता है कि इनोंने संग भी निकाले हैं इनकी बनी गढी के दो बुरुज देवास में अब भी शेष हैं और वह स्थान खेडा नाम से प्रसिद्ध होकर वहां पर अब भी इसी कुल के वंशजों का निवास है। यह खेडे की गढी देवास के पुराने राजप्रासाद के बिलकुल निकट है। यह कुल देवास राज्य की सेवा कई शताब्दियों से करता आया है और कर रहा है। इन लोगों के पास पुराने समय में सवार आदि रहते थे और स्वामिकार्य के लिये इनोंने समयानुसार अपने प्राण भी धोके में डाले हैं। आज कल इस कुल में बहुत लोक उच्चशिक्षा पाये हुए हैं और पवार सरकार की सेवा में दत्तचित रहते हैं। सरकार से भी पुरानी जागीर नेमणुक, इनामि आदि अब भी उदर पोषण को यथा योग्य मिलते हैं। इस पुस्तक का लेखक स्वयं इन्दौर डेली कॉलेज में शिक्षक तथा ग्वालियर राज्यंतर्गत राजा साहब पहाड़गड़ तथा, राजासाहब लहार के शिक्षक तथा गार्डियन (संरक्षक) रहे हैं। इसीकुल के श्रीयुत जालिमसिंहजी भी एक सुयोग्य व्यक्ति है। आपने इन्दौर डेली कॉलेज में शिक्षा पाई है। आप भी

राजासाहब पहाड़गड़ के ट्यूटर तथा गार्डियन रहने के पश्चात ग्वालियर रियासत के कोर्ट ऑफ वार्डस के मेम्बर के पदपर काम करचुके हैं। आपका बड़ेबडे रईसों से मित्रत्व है। आप बंदूकसे अच्छा निशाना लगाते हैं और शेर की शिकार का आपको शौक है आपकी दिलेरी का यहां के श्री महाराजसाहब को इतना भरोसा है कि शेर की शिकार के समय वे इन्हें स्वयं अपने साथ तथा अपने दामाद के साथ रखते हैं। आपका इस संबंध का छाया चित्र चित्रमय जगतके सप्टेंबर सन १९२९ ई. के अंकमें भी प्रसिद्ध होचुका है। चौधरी कुलको इनों ने गौरवान्वित कर रक्खा है।

देवास राज्य २ के चौधरी छत्रासिंह राज्य कोषके कर्मचारी हैं और ठाकुर कृष्णसिंह चौधरी राज्य में तथा प्रजाके सन्मानीय नेता माने जाते हैं।

इस कुलके वंशज ठाकुर कहलाते हैं। और सभी पुरुषों के नाम सिंहांतक होते हैं।

पुराने कागद पत्रों में देखने से पायागया है कि पहिले इसकुल के लोगों की भाषा गुजराती होना चाहिये। इन्हें पवार सरकार की ओर से चप्रास आदि सम्मान सूचक चिन्ह मिले हुए हैं। पहिले इनका सिक्का मोर्तब भी पत्रों पर होता था।

इस कुल में कुछ वाद उपस्थित होने से ई० स० १७८६ में महादाजीशिंदे ने इनके लिये पूना के पेशवा को एक पत्र लिखा है; उसमें इनको "देशमुख, देशपांडे" इस नाम से संबोधित किया है। एवं पोरवाड ज्ञाति में यही एक ऐसा कुल पाया जाता है कि जो पुरुवंश का पुराना संबंध उसी वंश के राजा महाराजाओं के साथ आजतक मान सन्मान से पालता आया है; और पंवार सरकार भी वैसाही कृपया निभाते आये हैं।

पोरवाडों की मालवा प्रांतिक महासभा के प्रथम आदि अधिवेशन के सभापतित्व का सम्मान, लेखक के ज्येष्ठ बन्धु चौधरी-कुल-दीपक देवास निवासी ठाकुर कृष्णसिंह गणपत-सिंहजी को ही प्राप्त हुआ है यह सचमुच इस वंश का सौभाग्य है। इस आनंद के समय आज तारीख २२ मार्च सन १९३० इ० के शुभ मुहूर्त पर इस पुस्तक को समाप्त कर पोरवाड ज्ञाति का शुभचिंतन करते हुए लेखनी विश्राम लेती है।